कौल-कल्पतरु
चण्डी

अघोरी का उपदेश

❁❁❁

तारापुर का महा-मानव

माँ तारा के अनन्य भक्त

वामा-क्षेपा

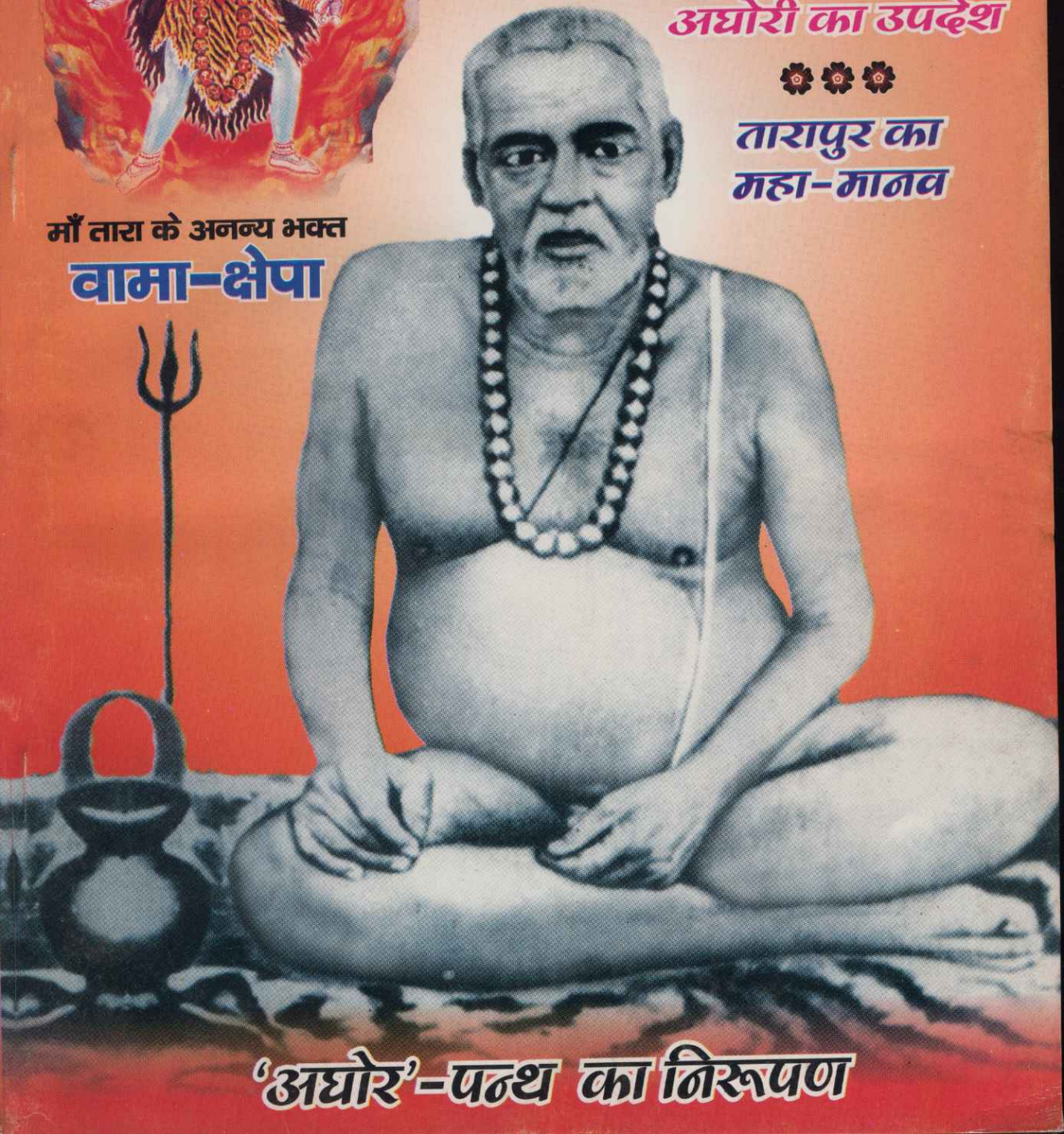

'अघोर'-पन्थ का निरूपण

'राष्ट्र-गुरु'
श्रीस्वामी जी
उपदेशामृत

जिस शिक्षा से दासता की शृङ्खला मजबूत होती हो, आदमी बुरी बातों का अभ्यासी बनता हो, अभिमान, घृणा, स्वार्थ-परायणता जिससे बढ़े, वास्तव में वह शिक्षा नहीं। जहाँ तक हो सके, शीघ्र ही उसका त्याग करना चाहिए।

❁❁❁

सारा संसार 'आकूति' या 'इच्छा'-शक्ति का विलास है। 'ज्ञान'–'क्रिया' या जिन्हें 'शिव'–'शक्ति' कहते हैं, 'इच्छा'–शक्ति से ही स्वरूप लाभ करते हैं।

समष्टि - व्यष्टि – उभय रूप से 'इच्छा'-शक्ति ही जगत् के समस्त व्यवहारों का मूल है। समष्टि में प्रतिफलित 'इच्छा'-शक्ति शुद्ध सामर्थ्य से युक्त है। व्यष्टि में 'अविद्या' का आधार होने से 'हीनता', 'अल्पत्व' आदि भावों से युक्त होकर वह अल्प सामर्थ्य-वाली हो जाती हैं

'जीव' जब तक अपनी 'सङ्कल्प'-शक्ति को समष्टि में नहीं मिला देता, तब तक वह संसारी रहता है। महत्त्वा-कांक्षी जीव 'योग' द्वारा परम शक्ति को प्राप्त करके कृत-कृत्य हो जाता है।

❁❁❁

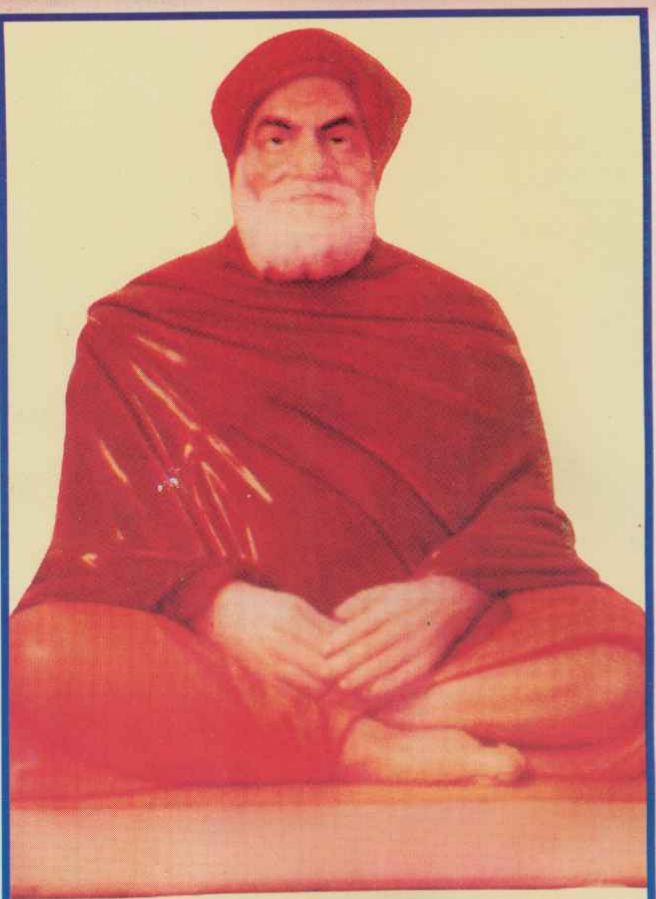

श्रीस्वामी-मन्दिर में स्वामी जी का विग्रह
(श्रीपीताम्बरा-पीठ, दतिया)

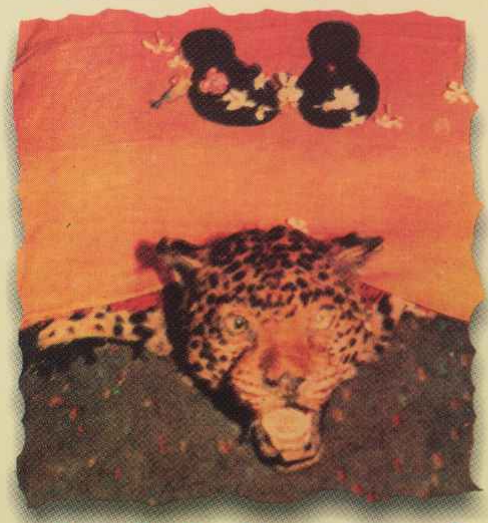

श्रीस्वामी जी की चरण-पादुकाएँ
व्याघ्र-चर्मासन

'चण्डी' : विशेष प्रस्तुति

'अघोर'-पन्थ का निरूपण

'तारा-पीठ' के सिद्ध महा-पुरुष श्री वामा-क्षेपा की कथा

(१) अघोरी का उपदेश

(२) पाप का प्रायश्चित्त

(३) तारापुर का महा-मानव

सम्पादक

रमादत्त शुक्ल

ऋतशील शर्मा

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक :

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९२३५९१००७१

प्रकाशक :
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६
दूर-भाष : ९२३५९१००७१

चतुर्थ संशोधित एवं संवर्धित संस्करण
गङ्गा दशहरा, अधिक ज्येष्ठ-शुक्ल-पक्ष, २०६४ वि० (२६ मई, २००७)
सर्वाधिकार सुरक्षित

उपयोगी पुस्तकें

१. धर्म-मार्ग पर	२५-००
२. साधक का संवाद	२५-००
३. बिहार में शक्ति-साधना	१५-००
४. महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल	२०.००
५. वैद्यनाथ-धाम का माहात्म्य	२५.००

अनुदान : २५-०० रु०

मुद्रक :
परा-वाणी प्रेस
अलोपी देवी मार्ग
प्रयाग-राज (उ०प्र०)-२११००६

अनुक्रम

१. प्राक्कथन : 'अघोर'- साधना का रहस्य ..... (पाँच)

२. अघोरी का उपदेश : वामा-क्षेपा की सत्य कथा (१) १-१९

- 'कौल', 'अघोर' आदि के मूल में 'शाक्त-साधना' ३
- शाक्त-धर्म में तीन भावों के अन्तर्गत तीन-तीन अनुभाव ४
- 'अघोर'-साधना शाक्त-धर्म के अन्तर्गत साधना का अन्तिम पड़ाव ५
- 'अघोर'-शब्द का शाब्दिक अर्थ ६
- नग्न, मुक्त-केशी, त्रिशूल-धारी होने का अर्थ ७
- कपाल-पात्र, कमण्डलु धारण करने एवं श्मशान में रहने का अर्थ ८
- 'अघोर'-मार्ग एवं 'भक्ति-मार्ग' ९
- 'अघोरी' और 'शब्द' १०
- 'अघोरी' और 'स्पर्श' ११
- 'अघोरी' और 'रूप' १२
- 'अघोरी' और 'रस' १३
- 'अघोरी' और 'गन्ध' १४
- 'अघोर'-मार्ग की मुख्य बात १५
- 'अघोरी' और 'मद्य' १६
- 'अघोरी' वामा-क्षेपा के उपदेश १७-१९

३. 'अघोर'-मत के कुछ अन्य तथ्य २०

- 'अघोरः' अर्थात् भगवान् शङ्कर २०

४. 'अघोर' और 'अघोर'-साधना २१-२३

- 'अघोर'-मुखी शिव की साधना २१
- 'अघोरा' अर्थात् भगवती २२
- 'अघोर'-पन्थ २३

५. 'अघोर'-मन्त्र का विधान २४

- 'अघोर'-मन्त्र का माहात्म्य २४

६. पाप का प्रायश्चित्त : वामा-क्षेपा की सत्य कथा (२) २५
♦ 'वामा-क्षेपा' का आविर्भाव २५-२९
७. अघोरी वामा-क्षेपा के सिद्धोपदेश ३०
८. तारापुर का महा-मानव : वामा-क्षेपा की सत्य कथा (३) ३१
♦ 'वामा-क्षेपा' की जन्म-स्थली 'वीर-भूमि' ३१-३३
♦ 'वामा-क्षेपा' के अमृत-मय उपदेश ३४
♦ बाबा श्रीवामा-क्षेपा का 'अर्थ'-सम्बन्धी निराला उपदेश ३५
♦ 'मातृ-पूजा' का उपदेश ३६
♦ आर्त्त-जनों के दुःख-निवारण के लिए जगज्जननी तारा से प्रार्थना ३६
♦ सभी 'शाक्त' ३८
♦ 'शक्ति' का प्रयोग ३९
♦ महा-कौलिक वामा-क्षेपा ४०
♦ श्मशान-पीठ ४१
♦ महा-साधक श्री निगमानन्द देव ४२
♦ श्मशान-साधना ४३
♦ श्मशान अथवा वीर-साधना ४४
♦ तारा-पीठ की महिमा ४५
♦ 'अघोरस्तेजो०' ४६
♦ 'अघोरेश' ४७
८. महा-सिद्ध अघोरी श्रीवामा-क्षेपा का अद्‌भुत चरित ४९
♦ 'तारा-पीठ' की प्रथा ४९
♦ 'तारा-पीठ' में माई की मूर्ति ५०
♦ 'तारा-पीठ' के श्मशान में साधकों के समाधि-मन्दिर ५१
♦ उपदेश ५२
९. तन्त्र-साधना का महत्त्व-पूर्ण पीठ– तारा-पीठ ५३
१०. 'वीराचार' की साधना-स्थली 'वीर-भूमि' ५६

प्राक्कथन :

'अघोर'-साधना का रहस्य

'अघोर-साधना'-तन्त्र-शास्त्र की उच्च कोटि की साधना है। **तन्त्र-शास्त्र** की वास्तविक जानकारी न होने के कारण इसके सम्बन्ध में आज प्रायः सभी लोग भ्रमित हैं। समाज में इस सम्बन्ध में कितना भ्रम है, यह इस बात से स्पष्ट है कि आज कोई भी बड़ी-बड़ी जटाएँ रखकर, शरीर में भस्म आदि लगाकर, त्रिशूल आदि हाथों में लेकर '**अघोरी**' बनने का दुःसाहस कर सकता है।

ऐसा तभी सम्भव है, जब '**अघोर**'-**मत** अथवा '**अघोर**'-**साधना** क्या है–इसके बारे में बड़ी संख्या में लोग अनभिज्ञ हों। लोगों को ज्ञात ही न हो कि '**अघोर**'-**साधना** है क्या? इसका माहात्म्य क्या है? इसका रहस्य क्या है?

आज लोग केवल या तो ऊपरी बातें जानते हैं अथवा '**चमत्कार**' की बातें जानते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि जैसे ही लोग ऊपरी '**आडम्बर**' से युक्त किसी व्यक्ति/महिला को देखते हैं, वैसे ही या तो भय-वश अथवा उत्सुकता-वश उसे कुछ द्रव्य आदि देकर उसका आशीर्वाद पाकर सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं अथवा '**चमत्कार**' आदि के उद्देश्य से उसके चक्कर में पड़ जाते हैं!

फिल्मों, दूर-दर्शन आदि के द्वारा भी इस सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ ही फैलाई जा रही हैं। फिल्मों में खुले आम खल-नायक को '**अघोरी**' के रूप में दिखाया जा रहा है क्योंकि फिल्मकारों की मान्यता है कि समाज में ऐसे चरित की उपस्थिति एक सच्चाई है और उसी सच मात्र को वे चित्रित करते हैं।

'दूर-दर्शन' के 'जी-न्यूज चैनल' द्वारा '**काल-कपाल-महाकाल**' नाम से एक 'सीरियल' लगभग दो वर्षों से लगातार दिखाया जा रहा है। इस 'सीरियल' द्वारा भी '**श्मशान**' में '**अघोर**'-**साधना की ऊल-जलूल क्रियाएँ** दिखाई जा रही हैं, जिनका कहीं कोई प्रमाण नहीं है। आज तक किसी **प्रसिद्ध अघोरी** का न तो उसमें उल्लेख हुआ है, न ही '**अघोर**'-**मत सम्बन्धी प्रामाणिक मन्त्र या पद्धति** की उसमें चर्चा हुई है। लोगों को ऊल-जलूल दृश्य दिखाकर उन्हें भयभीत किया जाता है कि '**कमजोर दिलवाले बूढ़े और बच्चे इसे न देखें!**' कोई नहीं पूछता कि यह सब क्या है? यह कैसी 'साधना' है? इसका प्रमाण क्या है? इससे समाज को क्या मिलेगा?

'**श्मशान**'-**साधना** जैसी गम्भीर साधना के सम्बन्ध में आज हमारी सोच कितनी हास्यास्पद एवं निचले स्तर की है, यह 'दूर-दर्शन' के ही एक चैनल में उस समय स्पष्ट रूप से दिखाई दिया, जब उसने क्रिकेट के 'विश्व-कप-मैच' के सम्बन्ध में एक साधक को '**श्मशान**' में भारतीय टीम की जीत के लिए साधना करते हुए प्रमुखता से दिखाया!

संक्षेप में, आधुनिक भारत में नए-नए विषयों का अध्ययन-अध्यापन आज बहुत जोर-शोर से हो रहा है किन्तु प्राचीन विषयों की घोर उपेक्षा हो रही है। आवश्यकता है कि इस ओर ध्यान दिया जाए। **प्राचीन ज्ञान** हमारी अद्‌भुत धरोहर है। 'दूर-सञ्चार' के युग में इसके अच्छे ज्ञान द्वारा हम पूरे विश्व को कल्याण का मार्ग दिखा सकते हैं, जिसकी बहुत आवश्यकता है। प्रस्तुत पुस्तक द्वारा इस सम्बन्ध में एक छोटा-सा प्रयास हुआ है। आशा है कि पाठक-बन्धु इससे उद्‌-बोधित होंगे।

यहाँ यह पुनः उल्लेखनीय है कि **अघोरियों के द्वारा की जानेवाली 'श्मशान'-क्रिया** मनगढ़न्त या कोई ऊल-जलूल क्रिया नहीं है। यह **'तन्त्र-शास्त्र'** में वर्णित अनेक गम्भीर साधनाओं में से एक है। आज इसके जानकार बहुत कम हैं, जो हैं वे प्रकट नहीं होना चाहते। फिर भी **'तन्त्र-शास्त्र'** के अध्ययन से हम इसके स्वरूप, माहात्म्य एवं रहस्य को हृदयङ्गम कर सकते हैं।

तन्त्रों में सभी प्रकार की साधनाएँ **अधम, मध्यम** या **उत्तम** के भेद से अथवा **पशु, वीर** व **दिव्य** के भेद से तीन प्रकार से वर्णित हैं। **'श्मशान'-क्रिया** का अनुष्ठान भी तीन श्रेणियों में विभक्त है–

(१) जो स्थूल-कर्मी हैं, आधि-भौतिक फल की प्राप्ति ही जिनका लक्ष्य है, वे सभी कार्य स्थूल-वस्तुओं की सहायता से करते हैं।

(२) जो सूक्ष्म-कर्मी हैं, आधि-दैविक फल के इच्छुक हैं, वे स्थूल-वस्तुओं का प्रयोग करते हैं किन्तु **'स्थूल'** की सहायता से **'सूक्ष्म'**-पथ-विशिष्ट दैवी शक्ति की अलौकिक सहायता की प्राप्ति ही उनका लक्ष्य होता है।

(३) जो सूक्ष्मातीत कारण या आध्यात्मिक तत्त्वाभिलाषी हैं, वे प्राथमिक शिक्षा में साधना-समय में तथा सिद्धावस्था में अनुगत साधक-गणों को सिखाने के लिए अथवा कल्याण की कामना से **'स्थूल'** वस्तुओं का उपयोग कभी-कभी करते हैं, पर उनको उनकी वैसी आवश्यकता होती नहीं, वे केवल **'सूक्ष्मातीत'** ज्ञान को ही ग्रहण करते हैं।

'तन्त्रों' के अनुसार **'श्मशान-क्रिया'** में **घृणा, भय** आदि **अष्ट-पाशों** से **'मुक्ति'** प्राप्त करने के निमित्त ही **'स्थूल शव'** का प्रयोग होता है। **'मङ्गल-वार'** या **'शनि-वार'** को एक **'नर-मुण्ड'** लाकर **'पञ्च-गव्य'** से स्नान कराकर, **'चन्दन'** से लिप्त किसी **'निर्जन-वन'** में या **'निर्जन क्षेत्र'** में आधे हाथ का गहरा गड्ढा खोदकर, उसमें उसे स्थापित कर, उसके ऊपर अपना **'आसन'** स्थापित कर **जपादि** करते हैं अथवा पूर्व-कथित दिवस में **पूर्ण-काय-शव** लाकर यथा-विधि शोधन कर किसी उपयुक्त स्थान पर स्थापित कर, उस पर **गुरु के द्वारा बताई विधि** के अनुसार **'आसन'** जमा कर **जप-पुरश्चरण** करते हैं अथवा **'कृष्ण'-पक्ष** या **'शुक्ल'-पक्ष** की **'अष्टमी'** या **'चतुर्दशी'** के दिन डेढ़

पहर रात बीत जाने पर किसी '**चिता**' या '**शव**' के पास **निर्भयता-पूर्वक जपादि** करते हैं। आदि-आदि।

'**चिता**' के सम्बन्ध में **तन्त्र-शास्त्र** का स्पष्ट मत यही है कि **चिता-असंस्कृत** होनी चाहिए। '**संस्कृत**' अथवा '**संस्कारित चिता**' को ग्रहण करना मना है। जिस '**शव**' को लोग यूँ ही बिना किसी विशेष क्रिया के जला देते हैं, वही '**चिता**' साधकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी तथा फल-प्रद होती है–ऐसा **तन्त्रों** में स्पष्ट रूप से वर्णित है, जिससे यह सहज ही ज्ञात होता है कि इसके पीछे कुछ विशेष मन्तव्य है।

श्मशान-क्रिया के सम्बन्ध में '**तन्त्रों**' में लिखा है कि '**चिता**' या '**श्मशान**' की '**पूर्व**'-दिशा में '**श्मशानाधिप**' की, '**दक्षिण**' में '**भैरव**' की, '**पश्चिम**' में '**काल-भैरव**' की तथा '**उत्तर**' में '**महा-काल-भैरव**' की **पूजा** व '**बलि**' देनी चाहिए।

'**तन्त्रों**' में यह भी लिखा है कि '**श्मशान**'-**साधना** योग्य गुरु के बताए मार्ग से उनके सान्निध्य में ही करना चाहिए। सभी क्रियाएँ अत्यन्त सावधानी से **नदी-तट** या **निर्जन-प्रदेश** में स्थित **श्मशान** में ही करनी चाहिए।

'**शव**' कैसा होना चाहिए? '**शव**' **की पूजा** की तैयारी में क्या-क्या करना चाहिए? इस सबके बारे में '**तन्त्रों**' में विशेष रूप से निर्देश है, जिसको यहाँ लिखना सम्भव नहीं है। मुख्य बात यह है कि '**तन्त्र**' बार-बार यह कहते हैं कि जिज्ञासु साधक **योग्य गुरु के उपदेशानुसार** ही करें, अन्यथा नाना दैवी बाधाओं की पग-पग पर आने की सम्भावनाएँ होती हैं।

'**तन्त्रों**' में '**श्मशान-साधना**' के '**सूक्ष्म स्वरूप**' पर भी प्रकाश डाला गया है। जिज्ञासु बन्धु विशेष अध्ययन के द्वारा अथवा योग्य गुरु के सदुपदेशों से उसे हृदयङ्गम कर सकते हैं और आज भी अपने जीवन को **कठिन स्थूल शव-साधना** किए बिना अद्‌भुत ज्ञान से आलोकित कर सकते हैं। '**तन्त्रों**' की यह शिक्षा ही आज जानने योग्य है क्योंकि **कठिन** '**शव-साधना**', '**मुण्ड-साधना**' आदि के बारे में '**तन्त्रों**' में जो निर्देश दिए गए हैं, उनका पालन सम्भव नहीं है, योग्य गुरुओं का भी अभाव है। अतएव **तन्त्रोक्त स्थूल श्मशान-साधना** के महत्त्व को हृदयङ्गम करते हुए **तन्त्रोक्त सूक्ष्म श्मशान-साधना** को ही आज जानना चाहिए और व्यवहार में लाना-चाहिए।

तन्त्रोक्त सूक्ष्म श्मशान-साधना के अनुसार हमारी '**शय्या**' ही हमारा **कल्पित शवासन** हो सकता है और उस पर बैठ कर हम नित्य प्रातः-काल, **श्रीगुरु-देव एवं इष्ट-देवता का मन-ही-मन पूजन** कर, **स्थूल शव-साधना** में कथित '**शव**' एवं '**मुण्ड**' का यथार्थ रहस्य घर बैठे जान सकते हैं।

'तन्त्रों' के अनुसार उक्त **सूक्ष्म शव-साधना** अर्थात् '**शय्या-साधना**' में सबसे पहले निरन्तर **काम-क्रोधादि** से पूर्ण, **पाप** से कलुषित अपनी देह को '**भूत-शुद्धि**' से पवित्र कर–अपघात से मरे हुए '**शव**' के रूप में देखे और अपने को उससे पृथक् समझ कर द्रष्टा–रूप में रहे। फिर दृश्य–रूप **अपने शव-देह** में **श्रद्धा** का चन्दन लगाए और उस पर बैठकर अपनी साधना में एकाग्र–चित्त से रत हो जाए। ऐसा करने पर '**शरीर**' **ही महा-श्मशान** में परिणत हो जाएगा और **ब्रह्म की शक्ति** को जानने का मार्ग प्रकट हो जाएगा।

संक्षेप में '**तन्त्रों**' में सभी प्रकार के काल के अनुरूप साधनाओं का वर्णन है। आवश्यकता है, अपने लिए **उपयोगी शास्त्रोक्त पद्धति** को खोजने की। **महान् अघोरी वामा क्षेपा** ने '**काल**' **के अनुरूप शास्त्रोक्त पद्धति** का अनुसरण किया था। उनके समय देश गुलाम था। अध्ययन की परम्परा छिन्न–भिन्न हो चुकी थी। '**गुरु-मन्त्र-इष्ट**' **के प्रति पूर्ण समर्पण** ही एक–मात्र राह थी, जिसके सच्चे अधिकारी '**श्रीवामा क्षेपा**' थे। **श्रीवामा-क्षेपा** ने **गुरु-इष्ट-कृपा** से वह कर दिखाया, जो अपने–आप में अद्‌भुत था।

श्रीवामा-क्षेपा, श्री रामकृष्ण परमहंस, भक्त रामप्रसाद आदि अनेक विभूतियाँ उस समय बङ्गाल में आविर्भूत हुई थीं क्योंकि '**जागरण**' की नई किरण वहाँ से फूटनेवाली थी। '**बङ्गाल**' इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान था। '**बङ्गाल**' में तब '**तन्त्र**'-**शास्त्रों के अध्ययन की गहरी नींव** खुद चुकी थी। उदाहरण के रूप में '**वृहत् तन्त्रसार**' के रचयिता **श्री कृष्णानन्द भट्टाचार्य**, '**आगम-वागीश**' (१५९५ ई०), '**शाक्तानन्द तरङ्गिणी**', '**तारा-रहस्य**' के रचयिता **श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मानन्द गिरि तीर्थावधूत** (१६वीं शताब्दी), '**श्रीतत्त्व-चिन्तामणि**', '**श्यामा-रहस्य**', '**शाक्त-क्रम**' के रचयिता **श्रीब्रह्मानन्द गिरि** (१६वीं शताब्दी) एवं '**सर्वोल्लास**'–जैसे श्रेष्ठतम ग्रन्थ के रचयिता '**दश-महा-विद्या-सिद्ध**' **श्री सर्वानन्दनाथ** (१५वीं शताब्दी) आदि अनेक **विद्वान् विभूतियाँ** वहाँ अवतरित हो चुकी थीं, जिन्होंने हजारों '**तन्त्र**'-**ग्रन्थों** को निचोड़ कर '**तन्त्र-शास्त्र**' के सिद्धान्तों को हृदयङ्गम करने के लिए एक पक्की आधार–शिला बना दी थी।

भक्त रामप्रसाद, रामकृष्ण परमहंस, वामा क्षेपा आदि **बङ्गाल की उक्त प्रसिद्ध तान्त्रिक वैचारिक परम्परा** की ही देन थे। यदि हमें '**अघोर**'-**मत** अथवा '**अघोर-साधना** को जानना है, तो हमें उक्त '**तान्त्रिक परम्परा**' को भी जानना होगा।

श्री चण्डी-धाम, प्रयागराज

–ऋतशील शर्मा

❖❖❖

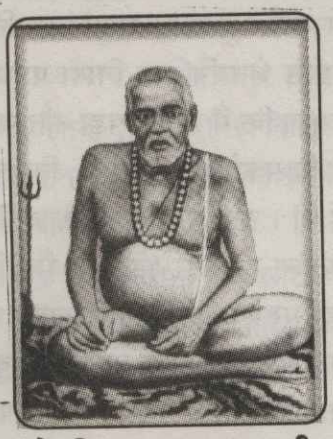

'तारा-पीठ' के सिद्ध महा-पुरुष श्री वामाचरण बाबा वामा-क्षेपा की सत्य कथा (१)

अघोरी का उपदेश

साधना का लोभ जैसे-जैसे मेरे मन में प्रबल होने लगा, वैसे-ही-वैसे मुझमें निर्भीकता भी बढ़ती गई। मैंने यह अच्छी तरह समझ लिया कि जब तक मैं दुःसाहस-भरा कदम उठाने को उद्यत न होऊँगा, तब तक मुझे परम सिद्ध मार्ग का वास्तविक ज्ञान सुलभ न हो सकेगा। यह सच है कि मैं स्वभाव से कभी भीरु नहीं रहा, फिर भी **कठिन साधना** के लिए मैं कहाँ तक कष्ट-सहिष्णु हो सकूँगा, यह मुझे पता नहीं था। अतएव मैंने अपने को उस सम्बन्ध में अभ्यासी बनाने का निश्चय किया। इसके लिए **'श्मशान'** को ही सबसे उपयुक्त समझ कर मैं वहाँ नित्य जाने की योजना को कार्य-रूप देने को प्रस्तुत होने लगा।

उस दिन एकादशी थी। मैं खिन्न-मन होकर सोच रहा था कि "...**'साधना-पथ'** मुझसे अभी तक दूर ही रहा। और-तो-और, किसी **'सिद्ध महा-पुरुष'** के दर्शन तक मुझे नहीं मिल सके कि उन्हीं से कुछ प्रेरणा पा सकता। यह मेरा कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि **'साधना-मार्ग'** का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर चुकने पर भी जहाँ-का-तहाँ ही पड़ा हूँ, आगे नहीं बढ़ पाया।..." इसी प्रकार के विचारों में सन्ध्या बीत गई और रात्रि का काला पर्दा चारों ओर छा गया। मुझे सदा की भाँति **'गीता'** का वह श्लोक याद हो आया और गुनगुना उठा-

"

"अघोरी का उपदेश" शीर्षक एक सच्ची घटना कथा-रूप में **'चण्डी'**-पत्रिका में बहुत पहले प्रकाशित हुई थी। यहाँ वही सच्ची घटना **'अघोर'-मत-सम्बन्धी कुछ आवश्यक ज्ञातव्य बातों** के साथ पुनः प्रस्तुत है।

-सम्पादक

"

"

"**अघोरी का उपदेश**" में वर्णित घटना **भारत के प्रख्यात सिद्ध महात्मा वामा-क्षेपा** से सम्बन्धित है।

बङ्गाल **शाक्त-धर्म** का केन्द्र रहा है। वहाँ **शाक्त-धर्म** के अनेक सिद्ध महात्मा हो गए हैं। उनमें से एक **महात्मा वामाख्या-वामा-क्षेपा** नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका नाम **श्रीवामाचरण चट्टोपाध्याय** था।

बङ्गाल के **वीर-भूमि** जिले के **तारा-पीठ** के निकट **आटला गाँव** में **सं० १८९३** में आपका जन्म हुआ था।

"

या निशा सर्व-भूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

न मालूम क्या सूझा कि मैं उठ ही पड़ा और बस्ती के बाहर पैर बढ़ा दिए । रात्रि के प्रहर खिसकते ही जा रहे थे, निर्मल आकाश में तारों की चादर-सी फैली हुई थी । उन्हीं के धवल प्रकाश में मैंने स्पष्ट देखा कि मैं '**श्मशान**' में आ पहुँचा हूँ। और भी देखा मैंने कि चारों ओर गम्भीर निस्तब्धता छाई है, दूर पर एक-दो चिताएँ जलकर भस्म-प्राय हो रही हैं- उनकी अन्तिम अग्नि-शिखाएँ वहाँ के प्रकाश को कुछ और तीव्र-तर कर रही हैं । उन्हीं की किरणों के फल-स्वरूप मैं देख पाया-स्थान-स्थान पर पड़े भग्न अस्थि-पञ्जरों और कपालों को! मैंने अपने को सँभालकर **कठिन साधना-मार्ग के माहात्म्य का स्मरण** किया और चारों ओर दृष्टि गड़ाकर खोजने लगा कि शायद कहीं कोई **साधक** साधना में संलग्न दिख जाए ।

'**श्मशान**' की निस्तब्धता वास्तव में भयङ्कर थी, परन्तु निर्मल आकाश में छिटके हुए तारे अत्यन्त ही मन-मोहक लग रहे थे और उनके कारण '**श्मशान**' की भयङ्करता से ध्यान बार-बार हट जाता था। जलती हुई चिताओं की ओर भी मेरा ध्यान बार-बार आकृष्ट हो रहा था। एक चिता तो अब समाप्त ही हो चुकी थी, पर दूसरी चिता में अभी बहुत कुछ शेष प्रतीत होता था ।

एकाएक मेरी दृष्टि उस चिता की ओर स्थिर हो उठी । मैंने देखा कि एक छाया-मूर्ति वहाँ क्रिया-शील हो रही है! मैं अपने आप उधर अग्रसर होने लगा । निकट पहुँचने पर स्पष्ट मुझे दिखा-वह छाया एक नङ्ग-धड़ङ्ग '**अघोरी**' की थी! '**अघोरी**' के हाथ में एक लम्बा बाँस था। उसी से वह जलती हुई चिता को कुरेद रहा था।

अचानक उसने बाँस उठा कर चिता पर आघात किया। मैंने चौंककर देखा, जलते हुए शव का '**कपाल**' खटाक् की आवाज के साथ नीचे आ गया और पलक झँपते-न-झँपते '**अघोरी**' ने बाँस फेंक जमीन पर पड़े अपने लम्बे चिमटे को उठा लिया और उससे उसने उस '**कपाल**' को चिता से निकाल लिया! अग्नि के प्रकाश में मैंने देखा, उस '**कपाल**' में मस्तिष्क का पदार्थ तरल रूप में उबल-सा रहा था! '**अघोरी**' ने दूसरे हाथ से भूमि पर रखे अपने '**नर-कपाल-पात्र**' को उठा लिया और उसमें उस तरल

पदार्थ को उड़ेल लिया। जलते हुए '**कपाल**' को उसने पुनः चिताग्नि में फेंक दिया। अब वह मुड़ा और एक ओर लम्बे डगों से बढ़ने लगा।

अपने इस कार्य में वह इतना दत्त-चित्त रहा कि उसका ध्यान तक मेरी ओर नहीं गया। या हो सकता है, जान-बूझकर उसने ध्यान न दिया हो। जो भी हो—मैं भी उसके पीछे हो लिया।

थोड़ी ही देर में एकान्त--स्थित अपनी एक छोटी-सी कुटिया के पास पहुँचकर एकाएक वह पलटा। अपने पीछे आते हुए मुझे उसने अब गौर से देखा और तब बोला—"ऐ साला! तू रात बीते इस जगह क्या करने आया है? बोल! आँय!"

मैंने सँभल कर उत्तर दिया—"दिन में तो यह दर्शन मिलना सहज नहीं।"

उसने कुछ और न कह कुटी के द्वार को खोलकर अन्दर प्रवेश किया—मैं भी भीतर घुस गया। कुटी का अन्तः-प्रदेश एक टिमटिमाते दीपक से आलोकित हो रहा था। सामने ही एक बड़े बर्तन में भात परोसा हुआ था, जिसमें से भाप उठती हुई यह सङ्केत कर रही थी कि वह अभी हाल ही में चूल्हे पर से उतारा गया है। निकट ही हाँड़ी भी रखी हुई दिखाई दे रही थी।

'**अघोरी**' ने '**नर-कपाल**' का वह द्रव पदार्थ उसी भात में उड़ेल दिया। '**कपाल**' को उसी में अच्छी तरह काँछ देने के बाद वह फिर मेरी ओर मुड़ा और बोला—"तू क्या मेरा खाना देखने आया है—"देख, तीन दिन बाद यह आज का अन्न-भोग!"

मैंने नम्र स्वर में कहा—"आज मैं धन्य हो गया। भोजन के बाद आप विश्राम करेंगे?"

वह फिर उग्र हो उठा—"यहाँ विश्राम की क्या बात तुझे दिखाई दी, रे साले! यहीं बैठकर देख, खाने के बाद किस तरह का विश्राम करता हूँ; बैठ, यहीं बैठ जा।"

मिट्टी के फर्श पर एक मैला-सा पत्ता पड़ा था। उसी को मैंने अपना आसन बनाया और वहीं बैठ गया। इसी समय दरवाजे पर दस्तक हुई, साथ ही आवाज आई—"बाबा, '**कारण**' आ गया। सेवा क्या इसी स्थान पर होगी?"

उसने कह दिया—"यहीं ले आ।"

"

"**अघोर-साधना**' क्या है, इसे '**अघोरी का उपदेश**' नामक कथा के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

प्रायः लोग '**अघोरी**' और '**अघोर-साधना**' के सम्बन्ध में गलत धारणा रखते हैं।

'**कौल**', '**अघोर**', '**वीर**', '**भैरव**' आदि के मूल में '**शाक्त-साधना**' है।

शाक्त-साधना के फल-स्वरूप सिद्धि पानेवाले महात्माओं का वास्तविक स्वरूप जानने के लिए जिज्ञासु बन्धुओं को '**तन्त्र**'-**सम्बन्धी शोध - साहित्य** का अध्ययन करना चाहिए।

"

"

शाक्त-धर्म में तम, रज और सत् गुण की प्रधानता के अनुसार **(१) पशु-भाव, (२) वीर-भाव** और **(३) दिव्य-भाव** के साधन का विधान है।

उक्त तीनों भावों के अन्तर्गत तीन -तीन अनुभाव हैं। यथा–

पशु-भाव में –

१. **वेदाचार**
२. **वैष्णवाचार**
३. **शैवाचार**

वीर-भाव में –

१. **दक्षिणाचार**
२. **सिद्धान्ताचार**
३. **वामाचार**

दिव्य-भाव में –

१. **अघोराचार**
२. **योगाचार**
३. **कौलाचार**

"

एक माँझी-जैसा आदमी एक कलसी अन्दर ले आया और '**अघोरी बाबा**' के निकट उसे रख दिया। बाबा ने घर के अन्दर किसी को सङ्केत कर आदेश किया–'**पात्र**' तो इधर देना।

एक '**पान-पात्र**' वहाँ आ गया। फिर उसने कलसी लानेवाले व्यक्ति से पूछा–"तेरा '**पात्र**' कहाँ ?"

उसने एक '**पात्र**' निकाल कर सामने बढ़ा दिया। '**अघोरी बाबा**' ने कलसी के ऊपर करांगुलि चलाकर उस पात्र को भर दिया और उसे पान कर जाने का आदेश किया। स्वयं भी कलसी को नि:शेष करने में प्रवृत्त हो गया। पान करने के बाद वह माँझी-जैसा आदमी उठ पड़ा और **बाबा** को प्रणाम कर चला गया। '**अघोरी**' शान्त जड़-वत् बैठा रहा, एक शब्द भी उसके मुख से न निकला। उसके चले जाने के बाद वह बोला–"तेरा मतलब क्या है रे, सो कह।"

मैंने कहा–"वह भात तो ठण्डा हुआ जा रहा है!"

वह बोला–"जब '**कारणानन्द**' चलता है, तब खाने की झोंक नहीं होती–तूने खाया है?"

मैंने कहा–"हाँ, रात्रि में सामान्य जल-पान कर चुका हूँ। उसे काफी देर हो चुकी है।"

"तब तो तेरे पेट में जगह होगी ?"

मैंने स्वीकार किया, पर तुरन्त ही कहा–"भूख का बोध होना धीरे-धीरे बन्द हो ही जाएगा।"

"अरे, खाने की सामग्री सामने देख तुझे लोभ नहीं होता ? खाने की इच्छा नहीं होती?"

"वह हो भी तो क्या, '**संयम**' भी तो कोई वस्तु है। खाने से ही जीवन नहीं चलता।"

"'**संयम** किसे कहते हैं रे! भूख के समय खाद्य देखकर खाने की इच्छा होती है, उसे दबा रखने का नाम '**संयम**' है क्या ? क्या कहता है!"

"'**लोभ** को प्रश्रय देना उचित नहीं। उसमें प्रवृत्ति होने से वह और भी प्रज्वलित न हो उठेगा?"

"तू भूख लगने पर, जबर्दस्ती कर, जो बिना खाए रहता है, उसे '**संयम**' कहता है! यह कैसी अनहोनी बात! इस तरह का '**संयम**' तूने कहाँ से सीखा?"

"भूख के समय यदि '**आहार-संयम**' न करूँ, तो फिर और कब '**संयम**' का अभ्यास करूँगा ? पेट भर लेने पर '**संयम**' कहाँ रह गया !"

"अच्छा, बोल तो–'**कामेन्द्रिय-संयम**' के समय किस प्रकार '**संयम**' का अभ्यास करेगा ? वह तो इस प्रकार है कि शरीर में, मन में स्वाभाविक काम की उत्तेजना होती है, तब भोग के उपकरण सम्मुख रहने पर लँगोट कसे रहने का नाम ही तो तुम्हारे अनुसार '**संयम**' होगा न ?"

"पर **प्रवृत्ति** को प्रश्रय देने से '**संयम**' कहाँ रह जाएगा ?"

"**प्रवृत्ति** की असल उत्पत्ति कहाँ से होती है, यह तो मुझसे कह।"

"**मन** में ही **प्रवृत्ति** पहले दिखाई देती है ।"

"उसके बाद ?"

"**शरीर** में उसका **भोग** ।"

"यदि ऐसा है, तो **प्रवृत्ति** का मूल **मन** में हुआ न, अब '**संयम**' कहाँ करेगा ?"

मैंने स्वीकार किया–"**संयम** तो **मन** में ही होगा ।"

"ठीक कहता है तू, किन्तु '**इन्द्रिय-संयम**' के समय तो तू लँगोट कसने के फेर में दौड़ पड़ता है! उससे '**संयम**' की रक्षा कैसे होगी ?"

"**मन** में असल प्रवृत्ति होती है अवश्य, परन्तु शरीर में तो बेड़ा देना ही होगा ।"

"**शरीर** में बेड़ा देने से '**काम**' की ओर प्रवृत्ति न हो सकेगी, यह बात कहता है तू, परन्तु कोई सुयोग या तिल-मात्र उप-लक्षण उपस्थित हो जाने पर तुझमें '**काम**' की उत्तेजना होगी या नहीं ?"

"वह तो होगी अवश्य ।"

"स्वप्न में स्खलन होगा या नहीं ?"

"वह भी कभी-कभी सम्भव है ।"

"युवती के सामने आने पर मन में रङ्ग छाएगा या नहीं ?"

"यह स्वाभाविक है ।"

"तब तेरा '**संयम**' कहाँ रहा ? लँगोट बाँधने का फल ही क्या हुआ रे?"

मैंने कहा–"मेरी धारणा यह है कि इस प्रकार रुकावट होने से धीरे-धीरे अभ्यास हो जाएगा और तब किसी प्रकार की चञ्चलता नहीं हो सकेगी।"

"

'**अघोराचार**' अथवा '**अघोर**'-**साधना**–शाक्त-धर्म के अन्तर्गत **साधना के अन्तिम पड़ाव** हैं।

साधना के अन्तिम पड़ाव '**अघोराचार**' में साधक को संसार की किसी भी प्रकार की भयानकता न तो उसके हृदय को डिगा सकती है और न भ्रष्ट कर सकती है।

साधक इस अन्तिम पड़ाव में **जाति, कुल, शील** इत्यादि **अष्ट-पाशों** और **साधना के नियम-बन्धनों** से मुक्ति पा जाता है।

"

वह एकबारगी हँसकर बोला–"तू क्या सोचता है कि लँगोट कस कर '**कामेन्द्रिय**' को जय कर लेगा! तुझे मालूम भी है कि यह **काम-प्रवृत्ति-इन्द्रिय-उत्तेजना** है क्या और इसका तुझसे क्या सम्बन्ध है?"

"मैं तो यही जानता हूँ कि प्रजा-वृद्धि-**सृष्टि की शृङ्खला** बनाए रखने के उद्देश्य से ही '**काम-प्रवृत्ति**' होती है।"

उसने कहा–"एक बार के संसर्ग से एक सृष्टि तो हो जाती है, किन्तु इतनी बड़ी उद्दाम प्रवृत्ति की लगातार धारा को प्रत्येक जीवन से बाँध देने की सार्थकता क्या है? '**प्रकृति**' के बराबर हिसाबी और कोई है भी? तो फिर ऐसी व्यवस्था से उसका प्रयोजन क्या?"

मैंने स्वीकार किया–"इस सम्बन्ध में तो मैं स्वयं अन्धकार में हूँ। आप ही अपने प्रश्न की मीमांसा करने की कृपा करें, तो आपकी दया से मेरी भी जिज्ञासा पूरी हो जाए।"

उसने कहा–"अच्छा, बोल तो, कर्मेन्द्रियों में प्रथम कौन-सी इन्द्रिय है?"

मैं–"**वाक्, रसना**।"

"और अन्तिम इन्द्रिय कौन-सी है?"

"**उपस्थ** अर्थात् लिङ्ग।"

"इन सभी कर्मेन्द्रियों में जिस-जिस शक्ति का प्रदर्शन होता है, वे तुझे क्या वास्तव में पृथक् मालूम होती हैं?"

मैं–"नहीं, **एक ही 'शक्ति'** कर्म के समय अलग-अलग यन्त्रों के माध्यम से कार्य करती है।"

वह–"ठीक कहा! अब बता तो कि '**मन**' और '**प्राण**' की विशेषता क्या है?"

"**मन** को '**इच्छा-शक्ति**' कह सकते हैं और **प्राण** शरीर से युक्त होकर समस्त शारीरिक क्रियाओं को सम्पन्न करता है, परन्तु मूल में ये दोनों भिन्न नहीं हैं। '**प्राण**' का ही एक भाग '**मन**'-रूप से हमारे सभी कर्म चलाता है।"

"ठीक! अब बोल कि–यही '**मूल शक्ति**' कर्म-जगत् में **मन, बुद्धि** आदि **अन्तः-करण** के मध्य में, बुद्धि से लेकर समस्त इन्द्रियों के क्षेत्र में व्याप्त होकर **उपस्थ इन्द्रिय** तक की क्रियाओं को सम्पन्न करती है या नहीं? तू यह अनुभव करता है कि कुछ गोल-माल अब भी है?"

"

'**अघोर**'-शब्द का शाब्दिक अर्थ है– **अ+घोर**। अर्थात् जो भयानक न हो, जो भीषण न हो, जो सुन्दर हो–"**नास्ति घोरो यस्मात्।**"

शाक्त-धर्म में '**अघोरी**' वही है, जो **शुचि-अशुचि, भले-बुरे, लज्जा, घृणा, भय** इत्यादि से सर्वदा के लिए मुक्ति पाकर **दिन-रात अपने इष्ट-चरणों में लीन** रहता है। संसार की कोई भी **चिन्ता** या **प्रतिष्ठा** उसे नहीं व्यापती और वह **साक्षात् शिव** बनकर भ्रमण करता है।

"

मैं बोला–"नहीं, यह तो खूब स्पष्ट अनुभव करता हूँ।"

"तब सोच कर देख कि '**आदि चैतन्य-शक्ति**' ही हम लोगों में सूक्ष्म रूप से **बुद्धि** है और वही समस्त इन्द्रियों में व्याप्त होकर उन्हें सब विषयों में शक्ति-मान् रखती है। 'योग-शास्त्र' के मत में वही '**आज्ञा-चक्र**' में है और '**मूलाधार**'-पर्यन्त उसकी क्रिया अबाध रूप से होती रहती है। उसे तू क्या समझता है? '**तन्त्र-मत**' में वही '**कुण्डलिनी**' है। इसी से हम लोगों का **प्राण**–'**काम-मय काम-बीज**' से युक्त है। यही '**शक्ति**'–**सृष्टि** से आरम्भ कर **स्थिति** अथवा **पुष्टि** और **लय** अथवा **मुक्ति**-पर्यन्त प्रत्येक जीव को जीवन प्रदान करती है। इसके साथ जीव का अविच्छेद्य सम्बन्ध होता है। **ज्ञान** और **कर्मेन्द्रियों** का जीवन है–यही '**काम**'। इसे तू लँगोट से वश में करके करेगा क्या?"

मैंने कहा–"नीचे से ऊपर के मार्ग में जाने, **ध्यान-धारणा** के पथ में चलने के लिए ही यह मेरी चेष्टा है। इसके सिवा और मेरा उद्देश्य हो भी क्या सकता है?"

वह–"तेरे में **जीव-सृष्टि** का जो बीज है, उसे तू मार्ग देगा नहीं! '**प्रकृति**' ने तुझमें कुछेक जीवों की सृष्टि करने की जो व्यवस्था की है, उसके अनुकूल न चलकर तू अपना **इष्ट-लाभ** कैसे कर सकेगा? '**प्रकृति**' के विरुद्ध जाकर अपना या जगत् का क्या कल्याण करेगा?"

मैं बोला–"मान लीजिए कि स्थूल-सृष्टि की दिशा में न जाकर मैं उच्च मार्ग में अपनी **चैतन्य-शक्ति** को चलाना चाहूँ?"

उसने बाधा दी–"पर यह तो बता कि **प्रकृति-गत** '**कर्म-बीज**' स्फुटित हुए बिना अन्य पथ पर '**चैतन्य-शक्ति**' को चला कैसे पाएगा? वह तो असम्भव है–किसी ने, कभी, कहीं वैसा कर पाया भी है! साला, बड़ा बरजोर है क्या! स्थूल सृष्टि बढ़ाएगा नहीं? उसका क्या कोई फल नहीं है?"

मैंने दबे स्वर में कहा–"और '**पुरुषार्थ**'? '**पुरुषार्थ**' से क्या कुछ होता ही नहीं। हमारी यदि उधर इच्छा ही न हो, तो?"

उसने उग्र स्वर में कहा–"यदि ऐसा हो, तो समझूँगा कि तेरा ध्वज भङ्ग हो गया है··· या फिर तूने अप-व्यवहार-द्वारा अपनी **इन्द्रिय-शक्ति** नष्ट कर डाली है! अरे, साला बकता क्या है! **प्रकृति** के विशाल शक्ति-समुद्र के मध्य में एक नगण्य क्षुद्र व्यक्ति के '**पुरुषार्थ**' की हस्ती ही क्या रे!

"

शाक्त - **धर्म** के अन्तर्गत '**अघोरी**' प्रायः **दिग्-वस्त्रधारी** नग्न रहते हैं। यह उनके **माया** से **अतीत** होने का सूचक है।

वे **मुक्त-केशी** होते हैं। यह उनके **निर्विकारी** होने का सूचक है।

वे **त्रि-शूल-धारी** होते हैं। यह उनके **त्रिविध-उत्पात-नाशक** होने का सूचक है।

"

तेरे इस अभिप्राय से तो सिद्ध होता है कि तू किसी अहङ्कार में भूला हुआ है। **स्थूल-सृष्टि का बीज** रखते हुए **संसार-आश्रम** छोड़ **संन्यासाश्रम** में गए हुए कितने ही संन्यासियों को गृहस्थ-परिवारों में देखा नहीं है तूने?"

मैं बोला–"**प्रकृति** के विरुद्ध जाना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं उसके विरुद्ध जा भी नहीं सकता और न उसके विरुद्ध जाकर मैं कुछ लाभ ही उठा सकता हूँ। मेरा तो यही कहना है कि यदि मैं एक महत् उद्देश्य लिए कुछ करता जाऊँ..."

वह बीच में ही बोल उठा–"तू कुछ '**शक्ति**' लिए आया है और उसी के साथ तेरे संस्कारानुयायी सारे व्यापार के अनुरूप जैसा क्षेत्र आवश्यक है, उसी में तूने जन्म पाया है और उसी के अनुसार तेरे '**कर्म-क्षेत्र**' के योगायोग का भी विधान हो चुका है। शिशु-काल में माँ की गोद में जैसे तूने जीवन बिताया है, तेरे अभाव-अभियोग आदि सारे व्यापार की देख-रेख का भार माँ ने ले रखा था, ठीक वैसे ही बड़े होने पर गर्भ-धारिणी का अधिकार छोड़कर जो **अपनी** '**ज्ञान-बुद्धि-शक्ति**' को लेकर चलने की बात करता है या सोचता है, वह भी एक माँ की गोद में होता है। शैशव में गर्भ-धारिणी माँ ने जिस प्रकार तुझे जता दिया था कि वही तेरी प्रतिपालन-कर्त्री है, तू अपने सभी प्रयोजनों को उससे सिद्ध कर सकता है, उसी प्रकार अब बड़े होने पर–**ज्ञानवान्** होने पर जब तेरी आस्था '**आत्म-शक्ति**' पर बढ़ गई है, तब यह '**प्रकृति माँ**' ही तुझे जानने नहीं देती कि वही तेरी सब कर्मों और बुद्धि की सहायक है, बल्कि तेरे मन में यह भावना रहती है कि अपनी ही '**शक्ति**' से तू अपना जीवन-यापन करता है, कर्म करता है, भोग करता है और कितने ही बड़े-बड़े काम करता है! ठीक यही बात सभी के जीवन में लागू होती है। ऐसा यदि न होता, तो समस्त व्यापार में तुझे स्वाधीनता होने पर भी किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न करते-करते उसमें कब, कैसी, कहाँ से बाधा आ जाएगी, यह भी तू जानता होता। '**प्रकृति-जननी**' का यही क्रम है कि स्वयं आड़ में होकर तेरे स्वरूप को तुझे जनाती है, तुझको तेरे अपने स्वरूप में स्थित करती है–मुक्ति दिलाती है।"

मैं अनेक क्षणों तक निर्वाक् और स्तब्ध बैठा रह गया और कोई वार्ता करने की प्रवृत्ति ही नहीं हुई। '**अघोरी**' के प्रवचन से मुझे अपने **प्रकृति-मय जीवनाधार के स्वरूप की स्पष्ट झलक** दिख गई। **तत्त्व-**

"

'**अघोरी**' के पास **कपाल-पात्र, कमण्डलु** होते हैं। ये उनके **सतो-गुणी, ज्ञानी, पवित्र** होने के सूचक हैं।

'**अघोरी**' को '**श्मशान**' में रहना प्रिय होता है क्योंकि '**श्मशान**'-**शून्याकाश, तेजो-पुञ्ज, केवल प्रकाश** का प्रतीक अर्थात् बोधक होता है।

"

उपलब्धि का आनन्द पाकर कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो अन्य प्रश्न करके आत्म-तुष्टि में व्याघात पहुँचाए!

'अघोरी' ने कुछ रुककर फिर कहा–"क्यों रे, तेरा तो मुँह ही बन्द हो गया!"

मैं फिर भी चुप रहा। मुझे निरुत्तर देखकर वह उठकर भोजन के निकट जा बैठा और मुझसे कहा–"अच्छा, तब तक तू यहीं बैठ, मैं कुछ खा लूँ।"

'नर-कपाल-पात्र' में लाए हुए उसी मस्तिष्क-जन्य घी के साथ वह परम तृप्ति-पूर्वक भोजन करने लगा। भोजन कर चुकने पर बचा हुआ काफी अन्न एक पत्तल में बाहर ले जाकर कुत्ते को खिला दिया। उसके शरीर के अनुपात में इतना अल्प आहार देखकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ।

उनके पुनः अपने आसन पर बैठ जाने पर मैंने कहा–"आपकी अपेक्षा तो मैं कहीं अधिक खाता हूँ।"

कुछ देर चुप रहकर वह बोला–"अच्छा बोल तो, लँगोट से तो तू 'इन्द्रिय-जय' कर लेगा, पर 'रसना-जय' के लिए क्या करेगा? 'रसना' की तृप्ति तुझे इष्ट है या नहीं?"

मैंने कहा–"मैं मानता हूँ कि 'कामेन्द्रिय-जय' के साथ 'रसना' का अतीव घनिष्ठ सम्बन्ध है, किन्तु मन में आता है कि एक 'रसना' को प्रश्रय देने से कोई क्षति नहीं होगी। मैं तो अपने इच्छानुकूल खाद्य का संग्रह करता नहीं। जैसा भोजन जुटे, उसी से 'रसना' का सम्बन्ध रहे, यही मेरा हिसाब है।"

उसने उच्च स्वर में कहा–"देख साले–तेरी इच्छा का फल है उल्टा रास्ता! यह कु-रास्ता है, इस पर जाने से तेरा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होने का।"

मैं बोला–"गेरुआ वस्त्र पहनकर, गृह-त्याग करके संन्यासी होने का उद्देश्य मेरा कभी नहीं रहा है। किन्तु संयम तो हमारे गृहस्थ जीवन में भी आवश्यक..."

वह बीच में ही बोल उठा–"देख, तुझे जितनी भूख होगी, उतना ही खाने की तुझमें प्रवृत्ति होगी और उसी के अनुसार आहार करने पर तेरी पुष्टि होगी, शरीर नीरोग रहेगा, किन्तु लोभ में पड़ कर 'रसना-सुख' के हिसाब से खाएगा, तो उसका फल होगा–रोग। तेरी जितनी 'प्राण-अग्नि'

"

'अघोर'-मार्ग एवं 'भक्ति'-मार्ग के सम्बन्ध में बाबाश्री कहते हैं–ये दोनों बिल्कुल ही अलग-अलग हैं। रेखा के दो छोरों की भाँति एक दूसरे के विपरीत हैं।

'भक्ति'-मार्ग में भक्त अपने को प्रभु के आश्रय पर छोड़ देता है।

'अघोर' - मार्ग में साधक अपनी ही 'शक्ति' पर जीवन बिताता है।

"

अर्थात् हजम-शक्ति है–तू लोभ-वश उसके अतिरिक्त यदि बोझा ठूँसेगा, तो तेरा स्वास्थ्य चौपट न होगा, तो और क्या! **सहज बुद्धि-व्यापार** को छोड़ इस गोल-माल में क्यों पड़ता है ? और यदि पड़ेगा, तो उस भूल का परिणाम–'**रोग**'–तुझे भोगना ही पड़ेगा। समझ कर देख, तो '**यौवन**' एक मधु-मय काल दिखेगा। मधु से '**मद**' का भी बोध होता है रे! '**सर्व-शक्ति-मत्ता**' का एक नशा जीव को विभोर कर देता है । सुख का चरम अनुभव होता है '**मैथुन**' में, जिसमें **स्पर्श-शब्द-रूप-रस-गन्ध** का एक साथ ही भोग होता है । इससे बड़ा और कोई पार्थिव सुख है नहीं । दो प्राणियों की समस्त इन्द्रियाँ एक होकर एक सत्ता में परिणत हो जाती हैं। अन्यान्य जो भी सुख हैं, उनमें कोई केवल '**शब्द**' का, कोई '**स्पर्श**' का, कोई '**रूप**' का, कोई '**रस**' का और कोई '**गन्ध**' का आनन्द देता है, किन्तु किसी में '**इन्द्रिय-वर्ग**' के पूर्ण सुख की समवेत अनुभूति नहीं होती। यह बात एक '**मैथुन**' में ही पाई जाती है, इसी से यह '**आदि-रस**' है, सृष्टि का मूल कारण है। जीव-सृष्टि के उत्कृष्ट काल '**यौवन**' में सृष्टि-उद्देश्य से यह '**मैथुन**' परम सुख-मय रखा गया है। उसी समय में ऊँचे-ऊँचे भावों का विकास और नाना प्रकार के रसों की सृष्टि आरम्भ होती है। तभी '**चैतन्यता**' का प्रसार होता है और '**जीव**' एक प्रकार के उन्माद-वश 'यौन सम्पर्क' में संलग्न होता है और सन्तान की कामना न करते हुए भी सृष्टि-प्रसार के कार्य में सहायक हो जाता है ।"

मैंने जिज्ञासा की–"**इन्द्रिय-सुख** के बदले में सृष्टि की सहायता की यह जो कथा आपने कही है, वह ठीक ही है, पर यह सुख तो शरीर और इन्द्रियों के मध्य ही सीमा-बद्ध है। '**तत्त्व-अनुभूति**' का जो 'आनन्द' है, वह क्या इस '**मैथुन-सुख**' से उच्च-तर नहीं है ?"

उसने कहा–"इसमें तो कोई सन्देह नहीं, किन्तु मुसीबत यह है कि मनुष्यों का एक समूह–बहु-संख्यक समूह है, जो '**इन्द्रिय-सुख**' को ही मुख्य मानता है । उसी सुख के पीछे वह भागता है, मानों···"

मैं बोला–"सचमुच बड़े जड़-बुद्धि मूर्ख लोग '**प्रकृति**' के···"

बीच में ही टोंकते हुए वह चीख पड़ा–"ओ रे साले, मूर्ख! तू तो मुझे पागल कर डालेगा! सुन तो, तेरा जो सभ्य, भद्र, अंग्रेजी पढ़ा-लिखा, एजूकेटेड, विद्या-बुद्धि-मान् समाज है, उसका प्रायः सर्वांश उक्त समूह में ही है । ये ही वास्तव में असभ्य वा मूर्ख हैं । ये अनेक संयत भाव से '**इन्द्रिय-**

"

'अघोरी' और 'शब्द'

'**शब्द**'–कान का विषय है। प्रत्येक व्यक्ति को मधुर सुनने में सुख और आनन्द का अनुभव होता है। बुरी बातें सुनना अच्छा नहीं लगता। अच्छी और बुरी दोनों बातों में '**मन**' को समान रखने के लिए '**अघोरी**' दिन भर **गालियाँ** बका करते हैं। **गालियाँ** सुनने की आदत पड़ जाने से यदि कोई अन्य व्यक्ति **गालियाँ** दे, तो वह क्रुद्ध नहीं होता।

"

भोग' करते हैं, जिनकी तुझे शायद कल्पना भी न होगी। अच्छा, बोल तो! **पुरुषत्व-हीनता, अजीर्ण, हृद्-रोग, पक्षाघात, वात, मूत्र-रोग, यक्ष्मा**–ये सब रोग भद्र-समाज में अधिक पाए जाते हैं या छोटे लोगों में?"

"यह तो सच है! ये सब रोग भद्र-लोक में ही अधिक हैं, इसका प्रमाण समाचार-पत्रों के विज्ञापनों से स्पष्ट ही है।"

"तब तू क्यों नहीं समझता कि '**विद्या-बुद्धि**' के साथ अधिक परिचय न होने से, अधिक सभ्य न होने से '**इन्द्रिय-सुख**' का इतना व्यभिचार कहाँ से होता है! सरल-बुद्धि असभ्य मूर्ख लोग उस प्रकार के **अवैध 'इन्द्रिय-भोग'** के लिए भला साहस कैसे कर सकते हैं? यह तो, तुम्हीं साले शैतानों के परिचय से जानते हैं, जो '**विद्या-बुद्धि**' से दूसरे भगवान् बन बैठते हैं, वे मूर्ख असभ्य समूह को लेकर अपना व्यवसाय करते हैं।"

मैं–"आपके कहने का मतलब क्या यह है कि '**कामेन्द्रिय**' और '**रसना**' आदि का '**संयम**' संसार में ही सम्भव है और बिलकुल अलग होकर साधना करने की आवश्यकता ही नहीं है?"

वह–"घर में रहने से '**संयम**' को कौन-सी बाधा है? और यदि कोई बाधा है, तो बाहर बाधा-हीन होकर ही क्या कर लोगे? जो असली बाधा है, वह तो तेरे सङ्ग ही है और सङ्ग ही रहेगी! '**तन्त्र**' में जो '**साधना**' बताई गई है, वह तो तेरे **गार्हस्थ्य-धर्म** के ही अनुकूल है। मैं तुझसे उसे ही ग्रहण करने को कहूँगा। अब तू बोल कि '**तन्त्रोक्त साधना**' का उद्देश्य जानना चाहता है या नहीं?"

मैं–"वह तो वास्तव में '**धर्म**' व '**साधना**' के नाम से '**पञ्च-मकार**' का अनुष्ठान भर है, जिसे '**राजसिक**' या '**तामसिक भोग**' एवं अधर्म के रूप में मैं जानता हूँ। '**धर्म**' कहकर सब कुछ ले लेने पर उसमें '**साधना**' का यथार्थ उद्देश्य ही क्या रह जाता है? एक '**धर्म**' में जिन वस्तुओं के त्याग का उपदेश है, दूसरे '**धर्म**' में उन्हीं को '**साधना**' का अङ्ग ग्रहण करना क्या आलोचना का विषय नहीं? यह सब मैं अच्छी तरह अवश्य जान लेना चाहता हूँ।"

उसने कहा–"यह तेरी बुद्धि वास्तव में भली है। कितने बड़े भाग्य से **धर्म-सम्बन्धी अनुसन्धान** की इच्छा होती है, उस पर वह सब जान लेने की चेष्टा करना मनुष्य के लिए सम्भव है। उससे कभी चूकना नहीं चाहिए। अब तू देख कि यह कैसा सुन्दर '**व्यावहारिक धर्म**' है! इसके

'अघोरी' और 'स्पर्श'

'स्पर्श'–चर्म का विषय है। **'मन'** को **'स्पर्श'** से आनन्द मिलता है। **स्पर्शानन्द** के पीछे **'मन'** न दौड़े, इसके लिए **'अघोरी'** चमड़ी पर मिर्च लगाते हैं और इस प्रकार **'मन'** को शिक्षण देते हैं।

समान सहज और सत्य भाव के ऊपर प्रतिष्ठित '**धर्म**' और कौन-सा है? मनुष्य की प्रकृति के अनुरूप यह '**तन्त्र-शास्त्र की साधना**' है। इसमें कोई भी अवान्तर या आडम्बर की बात नहीं है। तू समझ तो कि मनुष्य के यौवन से ही '**साधना**' का आरम्भ होता है–उस '**साधना**' के लिए इस प्रकार के पुष्टि-कर स्वाभाविक उप-करण, मनोवृत्ति से मिलता-जुलता '**साधनात्मक**' यह अनुष्ठान और किसी भी '**धर्म**' में सुलभ नहीं। '**प्रवृत्ति-मार्ग**' से ही '**तन्त्र की साधना**' है, इसका '**प्रकृति**' से कोई भी विरोध नहीं है। फिर अन्य सब धर्मों का जो उद्देश्य है, वही उद्देश्य '**तन्त्र-धर्म**' का भी है अर्थात् '**मुक्ति**'–**जीव के स्वरूप में अखण्ड सच्चिदानन्द की अनुभूति!**

जब तक '**पाश-बद्ध**' अवस्था रहती है, तब तक जीव '**जीव**' है, '**पाश-मुक्त**' होते ही वह '**शिव**' हो जाता है। जोर लगाकर बल प्रयोग करके **पाशों से मुक्त** होना सम्भव नहीं। इसके लिए तो एक क्रम है। उसी क्रम से चलने पर '**पाश-मुक्त**' होना सहज है और वह क्रम है–'**तन्त्र का धर्म**'।

जो '**चैतन्य-शक्ति**' इस जगत्-प्रपञ्च को फैलाए हुए है, वह हम सब में–प्रत्येक मनुष्य में पहले सुप्त रहती है, अविकसित अवस्था में रहती है। जिस प्रकार सोते समय हमें ज्ञान नहीं रहता, जगने पर ही हमको अपना ज्ञान होता है, जगत् -विषय का ज्ञान होता है, उसी प्रकार यह '**कुण्डलिनी शक्ति**' जब तक सुप्त है, तब तक '**आत्म-चैतन्य**' एवं सकल जगत् -प्रपञ्च के साथ '**कारण का ज्ञान**' भी सुप्त ही है–अविकसित अवस्था में ही है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। '**तन्त्र-धर्म**' है–**योग-शास्त्र का अनुगत धर्म।** इसमें **नैतिक आवर्जना** का प्रामुख्य है और इसी को लेकर **नीति-धर्म** के अनुयायी हीन-भाव से ग्रस्त होकर '**तन्त्र-धर्म**' से घृणा करते हैं।"

मैं–"**नैतिक आवर्जना** का प्रामुख्य है! सकल धर्मों का प्रथम आधार तो नीति ही है।"

वह–"इस '**नीति-शास्त्र**' के शासन से ही तो सकल '**धर्म**' विकृत हो गए हैं। '**प्रकृति**' के साथ जहाँ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, वहाँ '**नीति**' का क्या प्रयोजन? प्रत्येक '**धर्म**' में '**नीति**' का दबाव होने का ही फल हुआ है–'**मनुष्य**' का '**प्रकृति**' के साथ सङ्घर्ष और उसी से समाज में '**मिथ्याचार**'

"

'अघोरी' और 'रूप'

'**रूप**'–आँख का विषय है। आँखों को सुन्दर तथा आकर्षक वस्तुएँ देखना अच्छा लगता है। '**मन**'-सुन्दर पदार्थ देखने के लिए आकर्षित न हो, इसके लिए '**अघोरी**' गन्दी ही वस्तुएँ देखते और नोचा करते हैं।

"

का निर्लज्ज दृश्य दिखाई दे रहा है। यहाँ तक कि उसका प्रतिवाद तक करने की शक्ति आज मनुष्य में नहीं रह गई है। '**तन्त्र-साधना**' में वह '**नीति**' बिलकुल ही नहीं है क्योंकि मनुष्य की स्वाभाविक '**प्रवृत्ति**' का ग्रहण ही इसका असल उद्देश्य है। जीव-धर्म में यौवन से जो **प्रवृत्ति-समूह** जग उठता है, उसी से इस '**तान्त्रिक-साधना**' का आरम्भ होता है। यौवन में प्रथम आकांक्षा की वस्तु क्या है? पुष्टि-कर खाद्य ही तो। जिस समय में, जिस समाज में '**तन्त्र**' का आविर्भाव हुआ था, उस समय '**मद्य-पान**' सर्व-साधारण में प्रचलित था। शरीर में स्फूर्ति भरने के मूल लक्ष्य से यह समाज में बहुशः व्यवहार में लाया जाता था। तब इसके व्यवहार में कोई दोष नहीं था। '**मद्य**' में दोष है, सभी काल में है, किन्तु वह '**पात्र**' पर निर्भर करता है। जिसकी जैसी प्रकृति '**मद्य-पान**' करते समय रहती है, उसका उसी भावानुरूप उद्दीपन होता है। शरीर, मन की स्वाभाविक स्फूर्ति के लिए '**मद्य**' का पहले प्रयोग होता था, आज भी वैसा ही है। इसी से '**मद्य**' को पहला स्थान दिया है, जिससे स्फूर्ति की मात्रा बढ़ सके। उसके बाद है-'**मत्स्य-मांस**'। पुष्टि-कर खाद्य की दृष्टि से '**मत्स्य-मांस**' का महत्त्व किसी '**शाक्त**' को अधिक बताने की आवश्यकता है नहीं।"

मैं-"'**शाक्त** को छोड़कर और जो हैं, उनका···"

बीच में वह फिर बोल उठा-"सभी '**शाक्त**' हैं। जो '**शक्ति**' चाहता है, वह उपासना करे या न करे, '**शाक्त**' ही है। मैं तो मानता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य '**शाक्त**' है। जीव की प्रथम प्रवणता है-'**शक्ति-मुखी**'। जो इस बात को अस्वीकार करे, वह महा-मिथ्याचारी है।"

'**अघोरी**' की बात थी बड़ी कटु। अनेक लोक-प्रसिद्ध '**तान्त्रिक**' साधुओं के प्रति, जो सर्व-साधारण के बीच उच्च श्रेणी के महात्मा गिने जाते थे, उसकी बातों से स्पष्ट अवज्ञा झलक रही थी। ये साधु '**तान्त्रिक भैरव**' या '**कापालिक**' साधकों पर श्रद्धा नहीं रखते थे, इसका कारण भी '**अघोरी**' ने अपने वार्तालाप के प्रसङ्ग में कह सुनाया। उसकी बातों का सारांश थोड़े शब्दों में इस प्रकार है कि-

'**तन्त्र-मत**' के अनुसार '**साधना-पथ**' पर चलने पर-निष्ठा- पूर्वक '**साधना**' करने पर, साधक में अद्भुत '**शक्ति**' का विकास होता है। उसी समय अनेक साधकों में **अभिचार-क्रियाओं के प्रति प्रबल अनुराग** उत्पन्न होता है। उनके मन में '**शक्ति**' का प्रयोग करने की प्रवृत्ति उठती दिखाई देती है।

"

'अघोरी' और 'रस'

'**रस**'-जिह्वा का विषय है। इसे स्वादिष्ट खाना अच्छा लगता है। अस्वादिष्ट वस्तुएँ खाना अच्छा नहीं लगता। इन दोनों में '**मन**' समान रहे, इसके लिए '**अघोरी**'-कड़वे और घृणित पदार्थ खाया करते हैं।

"

अवश्य ही उनका मनो-भाव लोकोपकार की ओर झुका रहता है, परन्तु जैसा कि मनुष्य का स्वभाव है–कुछ-न-कुछ **राग-द्वेष** सभी में रहता ही है, साधक भी क्रमशः **स्वार्थ-सिद्धि** के लिए उक्त प्रकार के प्रयोगों में संलग्न होने लगते हैं। विशेष कर छः प्रकार के प्रयोग ऐसे साधक करते हैं और इन्हीं के फल-स्वरूप वे अपना सर्व-नाश कर बैठते हैं। इन प्रयोगों का ज्ञान सभी साधक रखते हैं।

ये प्रयोग हैं–**१. मारण, २. मोहन, ३. उच्चाटन, ४. वशीकरण, ५. विद्वेषण** और **६. स्तम्भन**। इन्हें छोड़कर और जो कुछ हैं, वे सब '**भूत-सिद्धि**' का फल हैं। कुछ '**जादू-टोना**'–जैसे प्रयोग करते हैं। इनसे अत्यन्त स्थूल बुद्धिवाले मनुष्य ही मोहित होते हैं। ऐसे प्रयोगों के करनेवालों की साधना को क्षति अवश्य पहुँचती है, पर उतनी नहीं, जितनी उक्त उग्र कर्म करनेवालों को। '**प्रकृति**' के साधारण नियम के ऊपर हाथ चलाने का फल उन्हें भोगना ही पड़ता है।

सृष्टि का नियम तो अनुल्लङ्घनीय होता है और जीवों के लिए कल्याण-कर। उनमें जिसे कल्याण का अनुभव न होता हो, उसकी बुद्धि पर किसी पाप का प्रभाव समझना चाहिए। वास्तव में '**तन्त्र**' में **आत्म-ज्ञान** या **मुक्ति का साधन** ही मुख्य है–अभिचारादि गौण एवं अवान्तर हैं। फिर भी '**तन्त्र-मार्ग**' से थोड़ा अग्रसर होकर कुछ रज व तमो-गुणी साधक छिपे-छिपे '**अभिचार-पथ**' पर चलने लगते हैं।

'**मैं शक्ति-मान् हूँ**'–यह अनुभव होने पर शिष्य-वर्ग पर आधिपत्य, धन-सम्पत्ति, नाना प्रकार के भोग-सुख और प्रसिद्धि आदि का लोभ उनके जीवन में जीवन्त हो उठता है। तब कहाँ रह सकता है–'**मोक्ष-साधन**' और कैसे सम्भव है '**इष्ट-लाभ**'! तब तो **रजो-गुण** और **तमो-गुण** का मेला ही अबाध रूप से दृष्टि-गत होने लगता है।

परिणाम में ऐसे साधकों की आयु शेष होने पर उनकी जो दुर्गति होती है, उसके सम्बन्ध में कुछ-न-कहना ही ठीक है। अहङ्कार-ग्रस्त हो जाने पर साधक की जो दशा होती है, उसे लेकर आलोचना करने का कोई फल नहीं। ऐसे साधक प्रकृत मार्ग पर चलनेवाले सच्चे साधकों की निन्दा करने से कभी नहीं चूकते। यह उनके लिए स्वाभाविक ही है क्योंकि इन्हीं के दृष्टान्त से उनके रहस्य का भण्डा-फोड़ सम्भव होता है।

❖❖❖

कुछ देर शान्त रहने के बाद मैंने फिर एक प्रश्न पूछ लिया–"अच्छा, '**भैरवी**' के द्वारा साधक का क्या उद्देश्य सिद्ध होता है?"

"

'अघोरी' और 'गन्ध'

'गन्ध'–नाक का विषय है। **'मन'**-सुवासित वस्तुओं में न फँसे, इसके लिए **'अघोरी'** साधक दुर्गन्ध सूँघने की आदत डालते हैं।

"

उसने उत्तर दिया–"उद्देश्य यह है कि '**पुरुष-अभिमानी**' प्रकृति '**नारी-अभिमानी**' प्रकृति के संयोग से '**आत्म-चेतना**' के उद्-बोधन में सहायता प्राप्त करती है। दो आत्माओं के मिलन से जो महत् फल उत्पन्न होता है, उसी से दोनों के जीवन सार्थक हो जाते हैं। यथार्थ साधक में लम्पटता का दोष नहीं होता। उससे एक ही कार्य का साधन हो सकता है। नरक की प्राप्ति साधक का उद्देश्य होता नहीं, उसका उद्देश्य तो बाह्य '**काम-मय**' **जीवन** की परि-समाप्ति होता है, '**आप्त-काम**' होना होता है। इस '**तन्त्र**' में इस प्रकार का साधन है, जिससे '**ऊर्ध्व-रेतत्व**' की उपलब्धि होती है। '**भैरवी**' को छोड़कर अन्य किसी स्त्री का सङ्ग न करने से सिद्धि-लाभ होता है, किन्तु अन्य सबमें तो वह चाह होती नहीं, स्थूल इन्द्रिय का ही मोह उनमें इतना अधिक होता है कि उसे मिटाकर **उच्च पथ का लक्ष्य** उन्हें मिल नहीं पाता"।

मैं–"इच्छा करने से क्या कोई **ऊर्ध्व-रेता** हो सकता है?"

वह–"और क्या करके भी कोई वैसा हो सकता है? कर्म-क्षेत्र में जीव-सृष्टि का जैसा अल्प या विस्तृत योगायोग होगा, वैसा ही '**ऊर्ध्व-रेता**' होने का सुयोग उपस्थित होगा। जन्म-जन्मान्तर की कर्म-प्रवणता के समाप्त हुए बिना कोई भी '**ऊर्ध्व-रेता**' नहीं हो सकता। वास्तव में '**ऊर्ध्व-रेता**' होना तो उद्देश्य है नहीं; उद्देश्य है कि हमारा जीवन **आनन्द-मय** हो, दुःख से निवृत्ति हो।"

ऐसी दशा में जब यौवन में हमारी आसक्ति नारी में प्रबल होती है, तब जबर्दस्ती मन को उधर से हटाना '**तन्त्र-शास्त्र**' से अनुमोदित नहीं। अस्वाभाविक रास्ते से जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह सम्भव भी नहीं।

यदि '**नारी-सङ्ग**' परिमित रूप में किया जाए, तो वह व्यभिचार नहीं होता और ऐसा करने से '**अध्यात्म-मार्ग**' में प्राप्य जितनी उन्नति है, वह सब मनुष्य को निर्विवाद रूप से सुलभ होती है। इससे मानव जीवन का फल सोलहो आने मिल जाता है।

मनुष्य को '**भोजन**' और '**इन्द्रिय-सुख**' का लोभ इतना प्रबल होता है कि जीवन के अन्यान्य कर्म गौण पड़ जाते हैं–वह इन्हीं दोनों के हेतु दूसरे काम करता रहता है। इस प्रकार उसके '**फल-भोग**' में कमी नहीं हो पाती।

"

'**अघोर**'-मार्ग की मुख्य बात यह है कि यदि '**जीव**' को '**शिव**'-जैसी शक्ति तथा गुण चाहिए, तो उसे '**अष्ट-पाशों**'– **१. घृणा, २. शङ्का, ३. भय, ४. लज्जा, ५. जुगुप्सा, ६. कुल, ७. शील** और **८. शक्ति**–से छूटना चाहिए।

"

'प्रकृति' मनुष्य को उसका 'भोग' प्रदान करती हुई जीव-सृष्टि का विस्तार करती है, प्रतिपालन करती है, साथ ही सन्तान के दुर्व्यवहार के द्वारा उसको दण्ड देती है। सारांश यह कि 'इन्द्रिय-सुख' को मुख्य मानने से जो 'कष्ट-भोग' करना पड़ता है, उससे मनुष्य को क्रमशः ज्ञान हो जाता है कि यथार्थतः उसमें सुख नहीं है।

जब तक जीवन में 'यौवन की भूख' रहती है, 'भोजन' और 'इन्द्रिय-गत सुख' पर्यवसित नहीं होते और भोग की आकांक्षा बनी रहती है, तब तक वह 'ऊर्ध्व-रेता' नहीं हो सकता, परन्तु परिमित 'यौन सम्बन्ध' रहते हुए भी यदि उच्च आदर्श में स्थिति होती जाए, तो उसी मात्रा में 'ऊर्ध्व-रेतत्व' की उपलब्धि होती जाती है।

'रेत' के 'ऊर्ध्व-गामी' होने से नाना तत्त्वों की प्राप्ति होती है। 'आत्म-तत्त्व' का साक्षात्कार होता है और 'परमात्मा' के सङ्ग उसका प्रेम-पूर्ण सम्बन्ध प्रतिष्ठित हो जाता है। स्थूल शरीर में 'मैथुन' का जो सुख है, उसकी उससे कोई तुलना ही नहीं। उस सुख को वही अनुभव कर सकता है—स्थूल देहाभिमानी मनुष्य उसे क्या समझेगा? उसके सम्बन्ध में कुछ और समझना अन्याय है। 'चैतन्य-शरीर' के विषय में वह प्रसङ्ग लागू नहीं हो सकता।

मैंने प्रसङ्ग बदलकर जिज्ञासा की—"अच्छा, 'तन्त्र' का सकल व्यापार इतना गुप्त क्यों है?"

उसने उत्तर दिया—"पहले गुप्त नहीं था। पूर्व-काल में 'तन्त्र' का साधन सहज था और सर्व-साधारण के लिए उपयोगी था, किन्तु जब से 'मैथुनादि'-प्रकरण और अदृष्ट-पूर्व फलाफल का आविष्कार होने लगा, तब से इसके गोपन का नियम प्रचलित हुआ क्योंकि अन्य सम्प्रदायों की दृष्टि में ये सब क्रियाएँ घृणित थीं। फिर थोड़े ही लोग इन क्रियाओं में निहित सार तत्त्व को ग्रहण कर सकते थे, अधिकांश के विपक्ष-गामी-व्यभिचारी ही होने की सम्भावना थी।"

किन्तु गुप्त रखने का दुष्परिणाम यह हुआ कि 'काम' के विकृत भावों की अभिव्यक्ति और भी होने लगी। स्त्री-पुरुष का मिलन ही 'रमण' है, इसी में शरीर-धर्म की साधारण प्रवृत्ति होती है, किन्तु शरीर-धर्म-वर्जित 'प्रेम' नामक जो स्वर्गीय सुख है, वह सर्व-साधारण व्यक्तियों के प्रति गुप्त, अज्ञात और अप्रकाशित रह गया।

"

'अघोरी' और 'मद्य'

'अघोर'-मार्ग में 'वीर'-मार्ग की भाँति मद्य (कारण) का प्रयोग होता है। 'मद्य'-अग्नि-तत्त्व का प्रतीक है। 'अघोर'-मत के अनुसार 'जीव' और 'शिव' के बीच शृङ्खला का नाश तभी होता है, जब अग्नि-तत्त्व इस कार्य में सहायक होता है।

'कारण' अर्थात् मद्य (अग्नि-तत्त्व) को ग्रहण करते समय 'अघोरी' अपने 'आत्म'-तत्त्व, 'विद्या'-तत्त्व एवं 'शिव'-तत्त्व का चिन्तन करते हैं।

"

मानव शरीर-गत या इन्द्रिय-गत सुख का '**संस्कार**' प्रत्येक व्यक्ति में इतना प्रबल होता है कि कोई इस बात की कल्पना भी नहीं कर पाता कि स्थूल शरीर के सम्पर्क को छोड़ देने से और भी अधिक सुख का उपाय हाथ में आ जाता है। आज '**तान्त्रिक**' लोगों के पतन में '**काम-साधना**' की विकृति का कितना हाथ रहा है, यह देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है।

इस धर्म में दो-एक सिद्ध हो गए—बाद में उसकी पद्धति कुछ विकृत हो गई, जिसका परिणाम शेष के लिए शोचनीय हुआ। इस कारण से और भी '**गोपनीय**' रखने की व्यवस्था हुई।

मैं बोला-"मेरी राय में तो यह सब गुप्त रखना घोर अन्याय है।"

उसने विरक्त होकर कहा—अरे भाई, उन दिनों आज के जैसे छापाखाने तो थे नहीं और न विद्या का इतना प्रचार ही था कि '**साधना**' का यह सारा गुप्त व्यापार साहित्य में देने से सब लोगों को सुलभ और सुबोध हो जाता। फिर साहित्य में उसे देने से लाभ ही क्या होता? हजार में एक मनुष्य भी '**साधना-पथ**' में जाता या न जाता। इसके सिवा शरीर में जो तमाम सूक्ष्म-से-सूक्ष्म '**नाड़ियाँ**' हैं, '**प्राण-शक्ति**' और '**अनुभव**' के नाना स्तर हैं—वह सब स्थूल साहित्य में देने से कौन कैसे समझ सकेगा? '**अनुभव**' की भाषा ही क्या?

इस सबके ऊपर '**काम-मार्ग**' का व्यापार कितना जटिल है! '**लिङ्ग**' से लेकर '**मस्तिष्क**' तक अन्तरस्थ '**प्राण-मार्ग**' में उसकी क्रिया होती है। '**रेत**' वा '**धातु-क्षरण**' के कितने प्रकार के भेद हैं, '**अन्तः-क्षरण**' और '**बहिः-क्षरण**', किस-किस क्रिया का क्या-क्या फल होता है, बहिर्गति बन्द कर अन्तर-मार्ग में गति-मान करना—यह सब व्यापार जब '**प्रकृति**' ने छिपा रखा है, तब कौन उसके प्रचार में अपने माथे को व्यर्थ में पीड़ा दे!

यह '**काम-कला**', जिसके कारण सृष्टि, स्थिति और लय का यह विराट् व्यापार दिन-रात चला जा रहा है, उसका इतना ही रहस्य है कि '**मनुष्य-शरीर**' के भीतर 'स्त्री-पुरुष' की भावना से '**काम**' का उद्दीपन होता है, जिसमें पड़कर दो जनों के ऊपर दो जनों का '**चैतन्य**' स्थित हो जाता है—इसका प्रभाव मन से प्रारम्भ होकर शरीर पर बल पड़ता है और 'मैथुन' में दोनों एक हो जाते हैं, '**प्राण-शक्ति**' के घन स्पन्द की उद्दाम लीला चलती है और अन्त में दोनों का 'स्खलन' हो जाता है।

"

अघोरी वामा-क्षेपा के उपदेश

♦ **ब्रह्म-ज्ञान** का अभाव ही **दुःख** की जड़ है।

♦ **अभाव** जितना बढ़ेगा, आशा भी उतनी ही बढ़ेगी।

♦ गति, ताप, आलोक, तड़ित् (विद्युत्), चुम्बक, रसायन आदि सभी **शक्ति के खेल** हैं। ये सब **जड़ शक्तियाँ** हैं, जिनके आधार पर भौतिक वैज्ञानिक विविध प्रकार के आविष्कार करते आए हैं। इनके अतिरिक्त शक्ति के दो खेल और हैं—'**प्राण**' एवं '**जीव-शक्ति**'। इस विश्व-प्रपञ्च के मूल में जो **अज्ञेय** और **अचिन्त्य शक्ति** है, वही इन विभिन्न शक्तियों के रूप में दिखाई देती है। **मूल शक्ति** एक ही है, जो जड़ नहीं है। वही है—हमारी **चिन्मयी तारा माँ**।

"

जिस क्रम से प्रारम्भ होकर शरीर में विभिन्न सूक्ष्म '**नाड़ी-जाल**' के भीतर जिस-जिस भाव में क्रियाएँ होती हैं, उन क्रियाओं में से प्रत्येक के प्रत्येक फल को क्या भाषा में व्यक्त किया जा सकता है? यह सारा **अनुभव-सिद्ध व्यापार** है–पूर्ण विज्ञान के ऊपर प्रतिष्ठित। स्थूल तुच्छ वास्तव प्रमाण देने से इस सबका प्रकाश लोक-समाज में कैसे हो सकता है?

'**काम**' की प्रथम प्रेरणा से लेकर पूर्ण परिणति तक जो समस्त व्यापार है, वही '**तन्त्र**' का प्रतिपाद्य विषय है। यह सब विषय किस उपाय से सब मनुष्यों की समझ में आ सकता है? तुम्हीं बताओ।"

मैं–"तो मनुष्य में स्वाभाविक यौवन आने से 'नारी' का 'पुरुष' के प्रति और 'पुरुष' का 'नारी' के प्रति जो एक प्रकार का आकर्षण होता है, वह क्या '**काम-व्यापार**' को ही चरितार्थ करने के लिए?"

बीच में ही टोंककर उसने कहा–"और बात आगे सुनूँगा। पहले एक भूल तुमको सुधारनी होगी। यह जो तुमने '**नारी**' और '**पुरुष**' कहा, वह तुम्हारी भूल है। तुम्हें कहना चाहिए–'**नारी-प्रकृति**' और '**पुरुष-प्रकृति**'।"

मैंने कुछ अवज्ञा से कहा–"यह तो आप लोगों के पारिभाषिक पद हैं– क्या ऐसा कहने से ही कुछ समझा जा सकता है?"

उग्र होकर वह बोला–"फिर साले, तू बहस करने लगा! समझता नहीं कि इस '**प्रकृति**' के राज्य में '**पुरुष**' कोई है ही नहीं। बातचीत में जिसे '**पुरुष**' कहते हैं, वह तो प्राकृत '**जीव**' है। पुल्लिङ्ग होने से ही क्या कोई **पुरुष** हो जाता है? अंशतः तो '**पुरुष**' का जो गुण है, वह '**नारी**' में भी मिलता है।

तुम देखते ही हो कि भगवान् को सभी चाहते हैं!–कौन नहीं चाहता? उन्हीं को एक-मात्र '**पूर्ण-पुरुष**' कहना चाहिए। यदि कोई '**पुरुष**' यहाँ होता, तो सभी उसको चाहते। अरे भाई, '**पुरुष**' का प्रथम और प्रधान गुण ही यही है कि वह सबका आश्रय होता है, सभी उसको चाहते हैं।

'**पुरुष**' एक है। '**दो पुरुष**' में विश्वास नहीं होता। '**प्रकृति**' की गोद में जितने '**जीव**' हैं, जो पृथ्वी की मिट्टी से उत्पन्न हुए हैं, उन सभी में '**प्रकृति-पुरुष**' के गुण के अतीव क्षुद्र-कण-बराबर अंश में पाए जाते हैं, परन्तु अभिमान उनको इतना होता है कि '**स्वतन्त्र पुरुष**' कहकर अपना परिचय देते हैं! कितनी लज्जा की बात है!

एक '**सदा-शिव पुरुष**' के सिवा और कोई '**पुरुष**' है ही नहीं। गुण पर विचार करते हुए देखने से मालूम होता है कि '**प्राकृत पुरुष**' का जब

"

अघोरी वामा-क्षेपा के उपदेश

♦ यह जगत् **अन्धी जड़ शक्ति** का खेल नहीं है, अपितु **चिन्मयी महा-शक्ति** का लीला-विलास है।

♦ **अष्ट-पाशों** (१. लज्जा, २. घृणा, ३. भय, ४. शोक, ५. जुगुप्सा, ६. कुल, ७. शील और ८. जाति) से छूटे बिना **चिन्मयी महा-शक्ति** के दर्शन नहीं मिलते। इन '**पाशों**' का जन्म **अहङ्कार** से होता है। '**अविद्या**' से जीव पाशों में बँधता है और '**विद्या**' से मुक्त होता है।

"

'नारी' से सम्बन्ध होता है, केवल उसी समय यह गुण सूक्ष्म-रूपेण लक्षित होता है। 'नारी' के सम्पर्क में वह अपना पूर्ण अधिकार रखना चाहता है, वहाँ और किसी का अधिकार वह सहन नहीं कर सकता।

'नारी' में भी यह गुण है—वह अपने 'पति' के ऊपर 'अन्य पुरुष' का प्रभाव सहन नहीं कर सकती। 'पुरुष' का यह गुण दोनों में दिखाई देता है। एक-मात्र 'प्रेम' के क्षेत्र में ही इसका परिचय मिलता है। 'मिलन' में दोनों 'एक-तन्त्र' हो जाते हैं। अब तो तूने 'असल पुरुष' और 'प्राकृत पुरुष' का अन्तर समझ लिया होगा। क्यों?"

मैं—"यह सब तो मेरी समझ से 'वैष्णव दर्शन' की कथा है!"

वह—"अरे साले, सब 'दर्शन' की सार वस्तु एक ही तो है। 'तत्त्व' में पहुँचने पर सब एक-समान हैं। पथ का प्रकरण या पद्धति ही अलग होती है। यह बात तू 'तन्त्र' की 'साधना-पद्धति' में भले प्रकार देख सकता है।"

मैंने पूछा—"शरीर-तत्त्व के साथ तो 'साधना' का विशेष सम्पर्क रहता है?"

वह—"साधना तो शरीर को लेकर ही है—उसके फल-स्वरूप स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन न होने से 'साधना' का अर्थ ही क्या! विकृत शरीर में 'साधना' का अर्थ है—शरीर की चिकित्सा। साधन-वस्तुएँ इतनी कल्याण-कर हैं कि उनसे और कुछ हो या न हो, शरीर में पूर्ण स्वास्थ्य का उद्भव होता ही है। जिस 'साधना' के करने से शरीर खराब हो, उसे जीवन का नहीं, मरण का साधन समझना चाहिए।

'साधना' का प्रथम प्रत्यक्ष फल होता है—'स्वास्थ्य'-आनन्द-मय मानसिक अवस्था। सकल विषयों की अन्दर में परि-समाप्ति। महा-दुःख का व्यापार होने पर भी साधक के प्राण में उस दुःख का कारण-ज्ञान उद्भासित हो उठता है—जिसका फल होता है 'आनन्द'। 'साधना' के ये स्पष्ट लक्षण हैं।

यह वार्तालाप होते-होते उषा-काल हो आया, पक्षियों का कल-रव बाहर सुनाई देने लगा। मैंने चौंक कर देखा, सूर्योदय होने ही वाला है।

खड़े होकर मैंने अघोरी महाराज को प्रणाम किया और चलने की अनुमति माँगी। परन्तु अनुमति देता कौन? वे तो समाधिस्थ हो चुके थे!

मैंने दूर से ही उनकी चरण-धूलि लेकर धीरे से कुटिया के कपाट खोले और बाहर हो गया।

❖❖❖

"

अघोरी वामा-क्षेपा के उपदेश

♦ मेरे पास के सभी जीव तारा माई की जाति के हैं। यहाँ चाण्डाल और ब्राह्मण दोनों का समान अधिकार है।

♦ गुरु से मन्त्र ग्रहण कर एक-निष्ठ होकर उसका जप करो। तभी मन को अपने वश में ला सकोगे।

♦ अन्तर्मुख हुए बिना सभी साधनाएँ निष्फल होती हैं।

♦ धर्म - कर्म - मय जितनी साधनाएँ हैं, सभी मन को वश में करने के लिए ही हैं। जब मन को वश में कर लोगे, तब तुम्हारी साधना के भीतर 'देवी' आएगी। उस समय तुम जिस रूप की कल्पना करोगे, 'तारा माई' उसी रूप में तुम्हारे सामने आएगी।

"

'अघोर'-मत के कुछ अन्य तथ्य

- भगवान् शिव के पाँचवें मुख का नाम 'अघोर' है।
- शिव और शक्ति के सामरस्य का प्रतिपादन ही 'अघोर'-परम्परा का लक्ष्य है।
- 'अघोर' साधकों के नामान्तर हैं–हिमाली, गिरनाली, कौल, अवधूत, अवघट, औघड़ आदि।
- विश्वामित्र मुनि, तैलङ्ग स्वामी, रामकृष्ण परमहंस, वामा-क्षेपा, बाबा कीनाराम, 'गुप्तावतार' बाबाश्री आदि जैसे महात्माओं ने 'अघोर-साधना' से सिद्धि प्राप्त की थी।
- उत्तर प्रदेश की पवित्र पुरी काशी (वाराणसी) के भेलूपुर-क्षेत्र में शिवाला मुहल्ले की रवीन्द्रपुरी बस्ती के निकट 'क्रीं-कुण्ड' नामक 'अघोर-पीठ' विश्व-विख्यात है। अघोर-साधना के श्रेष्ठ बाबा कीनाराम इसी 'क्रीं-कुण्ड' की परम्परा से सम्बद्ध थे। अघोरेश्वर अवधूत भगवान् श्री राम के दिव्य संरक्षण में यह 'अघोर-पीठ' आज भी एक जाग्रत् तीर्थ-स्थल है।
- धार्मिक कृत्यों के बाहर मद्य का पीना, सूँघना और दर्शन करना भी मना है। केवल 'मन की स्थिरता' के लिए, 'मन्त्रार्थ के स्फुरण' के लिए और 'भव-पाश की मुक्ति' के लिए 'मद्य-पान' का विधान है।
- 'कपाल-पात्र' परम पवित्र है क्योंकि उसमें धनञ्जय-प्राण का वास है। रज-वीर्य और स्व-मूत्र तथा मल के सेवन और प्रयोग से अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।
- लाल लँगोटी के धारण करने से शक्ति-तत्त्व से अहर्निश सम्पर्क बना रहता है क्योंकि लाल रङ्ग 'रज' का प्रतीक है।
- 'भग बिच लिङ्ग, लिङ्ग बिच पारा। जो राखे, सो गुरू हमारा'–'अघोर-मत' का प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का रहस्यार्थ यह है कि अति उत्तेजक स्थिति में भी साधक सहजावस्था बनाए रखे। भोग में योग को छिपाए रखना चाहिए।
- मुख्य बात है इष्ट-ध्यान और मन्त्र-जप। सत्य और प्रिय बोलना चाहिए। अप्रिय सत्य कभी नहीं कहना चाहिए। अमोघ 'कपालेश्वर' के ध्यान से इन्द्रिय-निग्रह होता है।

"

'अघोरः' अर्थात् भगवान् शङ्कर

'अघोरः'–भगवान् शङ्कर का नाम है। भगवान् शङ्कर जहाँ सृष्टि के संहारक हैं, वहीं वे कल्याणकारी भी हैं।

'संहारक' के रूप में भगवान् शङ्कर–'घोर' अर्थात् भयानक हैं, भीषण हैं। 'कल्याण-कर्ता' के रूप में भगवान् शङ्कर – 'अघोर' अर्थात् अत्यन्त सरल हैं।

"

'अघोर' और अघोर-साधना

'**अघोर**'-शब्द का बिगड़ा हुआ रूप '**औघड़**' है, जिसे '**अवघट**' का अपभ्रंश बताया जाता है। '**अवघट**'-शब्द का अर्थ है '**टेढ़े रास्ते चलनेवाला।**' आज इसी बिगड़े स्वरूप के सन्दर्भ में प्राय: नङ्ग-धड़ङ्ग घूमनेवाले, खाद्याखाद्य भक्षण करनेवाले, हाथ में कपाल व त्रिशूल लिए रहनेवाले, शरीर में भभूत लगानेवाले और रुद्राक्ष आदि की मालाएँ पहननेवाले तथा ऊट-पटाँग बोलनेवाले फक्कड़ों को '**औघड़**'-नाम से पुकारा जाता है। '**औघड़ों**' की तथाकथित विशेष पहचान के पीछे आज '**अघोर-साधना**' का वास्तविक रहस्य लुप्त-प्राय हो गया है।

वास्तव में '**अघोर-साधना**' भारत की प्रख्यात **शक्ति-साधना** से सम्बन्धित है। **यजुर्वेद** में **रुद्राध्याय** के अन्तर्गत **रुद्र की मङ्गल-मूर्ति** को '**शिवा**' कहा गया है और उसके लिए '**अघोरा**'-विशेषण का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार **रुद्र ही शिव हैं**–'**अघोर**' हैं। आगम या तन्त्र-शास्त्र में '**शिव**' और '**शक्ति**' को अभिन्न बताया गया है। इससे स्पष्ट है कि रुद्र इसीलिए **शिव** हैं क्योंकि वे '**शिवा**' या '**अघोरा**'-**शक्ति** से संयुक्त हैं। **काली, तारा, षोडशी** आदि **दश महा-विद्याओं** के रूप में आगम में इसी '**अघोरा**'-**शक्ति** का वर्णन किया गया है। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि **पूर्णाभिषेक-संस्कार** के अवसर पर **शाक्त-साधकों** को अन्य मन्त्रों के साथ ही '**अघोर-मन्त्र**' का भी उपदेश मिलता है।

'**अघोर-मन्त्र**' का साधक सब प्रकार से सिद्ध होता है। अत: वह **अवधूत**-रूप में जीवन बिताता है। उसके लिए '**श्मशान**'-साधना हेतु पवित्र पीठ बन जाता है, जहाँ वह **जगज्जननी का साक्षात्कार** प्राप्त करता है। **घृणा, जुगुप्सा** आदि से परे हो जाने के कारण, उसके लिए कुछ भी अखाद्य या अवाच्य नहीं रह जाता।

'**महा-निर्वाण तन्त्र**' में चार प्रकार के अवधूत बताए हैं– १. **ब्रह्मावधूत**, २. **शैवावधूत**, ३. **वीरावधूत** और ४. **कुलावधूत**। कुलाचार के अनुसार **पूर्णाभिषिक्त साधक** गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी '**कुलावधूत**' कहलाते हैं। '**अघोर साधक**' का यह स्वरूप अपने ढङ्ग का अनूठा और रहस्य-मय है। बिरले भाग्य-शाली लोग ही ऐसे साधकों को पहचान पाते हैं। शेष तीन अवधूत प्रकट '**अघोर**' या '**औघड़**'-रूप

> **'अघोर'-मुखी शिव की साधना**
>
> भगवान् शङ्कर के पाँच मुख हैं। पाँचों मुखों में दक्षिण की ओर का मुख '**अघोर-मुख**' कहलाता है और इन '**अघोरेश्वर**' की पूजा से सभी बाधाओं का विनाश होता है तथा '**ज्ञान**' व '**मोक्ष**' दोनों की प्राप्ति होती है।

"

'अघोरा' अर्थात् भगवती 'त्रिशिरो भैरव-शास्त्र' में अघोरेश्वर भगवान् शिव की आठ देवियों के नाम इस प्रकार दिए गए हैं–

१. अघोरा, २. परमाघोरा, ३. घोर-रूपा, ४. घोर-वक्त्रा, ५. भीमा, ६. भीषणा, ७. वमनी, ८. परा। यथा–

अघोरा परमाघोरा,
घोर-रूपा तथा परा।
घोर-वक्त्रा तथा भीमा,
भीषणा वमनी परा।।

उक्त आठ देवियाँ अष्ट-मातृकाओं की भाँति अष्टक में पूजित होती हैं।

"

में इधर-उधर दिखाई देते हैं, किन्तु उनमें भी कौन वास्तव में 'अघोर साधक' हैं और कौन मात्र 'औघड़' हैं, यह जान पाना सरल नहीं है।

'अघोर-साधना' के प्रवर्त्तकों में दो महा-पुरुष प्रसिद्ध हैं– १. गोरखनाथ और २. आचार्य दत्तात्रेय। गुरु गोरखनाथ के अनुयायी 'हिमालय' को पूज्य मानते हैं क्योंकि वही शिव-शक्ति की लीला-भूमि रही है। आचार्य दत्तात्रेय के अनुयायियों के लिए 'गिरनार पर्वत' का बड़ा महत्त्व है क्योंकि उसके शिखर पर श्रीदत्त की पादुका एवं कमण्डलु से सम्बन्धित तीर्थ-स्थान है। प्रायः सभी अवधूत साधक हिमालय और गिरनार पर्वत के दर्शन करने और वहाँ रहकर साधना करने पर बल देते हैं।

शाक्त-साधना के 'चक्रार्चन' के समान ही 'अघोर-साधना' में भी 'चक्र-पूजन' का विधान प्रचलित रहा है, किन्तु वह पूजन अलग ही ढङ्ग से होता है। उसमें गोलाकार-रूप में साधक लोग आचार्य के साथ बैठते हैं। बीच में एक 'घट' स्थापित कर 'दीपक' जलाया जाता है। आचार्य श्रीजगदम्बा का विधि-वत् आह्वान कर सबसे पहले 'पात्र' से अमृत का पान करते हैं। फिर वे उसी 'पात्र' को अपनी दाहिनी ओर बैठे साधक को देते हैं। वह साधक उस 'पात्र' में से अमृत पीकर अपनी दाहिनी ओर बैठे साधक को वही 'पात्र' पकड़ा देता है। इस प्रकार घूमता हुआ वह 'पात्र' पुनः आचार्य के हाथों में पहुँच जाता है। आचार्य शेष 'अमृत' का पान कर लेते हैं। इसके बाद दूसरा 'पात्र' बाँईं ओर से घुमाया जाता है और वापस आचार्य के पास उसके पहुँचने पर और उनके द्वारा शेष 'अमृत-पान' कर लेने पर सभी साधक खाद्य वस्तु की ३ या ५ आहुति स्वयं लेकर अपने उसी हाथ से आचार्य के मुख में आहुति देते हैं। तदनन्तर तीसरा 'पात्र' पुनः दाहिनी ओर से आचार्य घुमाते हैं। अन्त में 'चक्र-पूजन' का विसर्जन होता है और आचार्य तथा सभी साधक परस्पर गले मिलकर एक दूसरे को विदा करते हैं।

अघोरी साधकों के उक्त 'चक्र-पूजन' में पहले 'क्लीं फट्' से आसन की शुद्धि की जाती है। तब उस पर बैठ कर सिन्दूर, लाल चन्दन या जल से 'त्रिकोण-चतुष्कोण' का मण्डल बना कर उसके ऊपर घट रखा जाता है। घट में सिन्दूर लगाकर उसे दही-अक्षत अर्पित किया जाता है और फल-फूल तथा पत्तों से उसे अलंकृत करते हैं। तब सुगन्धित जल

से उसे भरकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप से उसकी पूजा कर उसमें इष्ट-देवता का ध्यान व पूजन किया जाता है।

एकत्र तत्त्व-सामग्री का शोधन 'मूलं फट्' से जल छिड़क कर करते हैं। 'कारण-पात्र' में अन्तर्दृष्टि से देखकर उसमें गन्ध-पुष्प छोड़कर 'अनन्तेश्वरी' और 'अनन्त-भैरव' का ध्यान-पूजन किया जाता है। सभी तत्त्वों को निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित किया जाता है—ॐ ह्रीं क्रीं स्वाहा।

विशेष बात यह है कि काम्य कर्मों की सिद्धि के लिए रक्त-वर्णवाले, अभिचार-कर्मों की सिद्धि के लिए कृष्ण वर्णवाले और ग्रह-भूतादि के भय को दूर करने के लिए मोती के समान उज्ज्वल वर्णवाले 'अघोर-रुद्र' का ध्यान करना चाहिए।

उक्त संक्षिप्त विवरण से यह सहज ही समझा जा सकता है कि 'अघोर-साधना' का अपना एक विधि-विधान है और परम्परा तथा अनुभूति के अनुसार उसमें विविध प्रकार के विकास होते रहे हैं। पूर्व-जन्म के संस्कारों के फल-स्वरूप ही भाग्य-शाली लोग इस साधना में प्रवेश पाते हैं और सफल होते हैं। पुस्तक से पढ़कर इस साधना में किसी को भी प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। किसी जानकार आचार्य या गुरुदेव के निर्देशन में ही इस साधना को करना चाहिए, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि ही उठानी पड़ती है।

❖❖❖

उ०प्र० में अघोर-पन्थ

उ०प्र० में अघोर-पन्थ के प्रचार-प्रसार में काशी के बाबा किनाराम का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपने बाबा कालूराम अघोर-पन्थी से अघोर-मत का उपदेश लिया था और १. रामगढ़ (काशी), २. देवल (गाजीपुर), ३. हरिहरपुर (जौनपुर) और ४. क्रीं-कुण्ड (काशी) में अघोर-पन्थ के चार मठ स्थापित किए, जहाँ से आज भी अघोर-मत सम्बन्धी प्रचार-प्रसार हो रहा है।

बाबा किनाराम ने १८०० वि० में १४२ वर्ष की अवस्था में समाधि ली थी।

'अघोर'-पन्थ

'अघोर'-पन्थ को 'अवधूत' अथवा 'सरभङ्ग'-मत भी कहते हैं।

'अघोर'-पन्थ का सम्बन्ध विशेष रूप से 'नाथ'-पन्थ के 'हठ-योग' तथा 'शाक्त'-मत के 'वामाचार' से है। प्राचीन भारत में 'अघोर'-पन्थ का मूल-स्थान आबू पर्वत था। बड़ोदा में 'अघोरेश्वर मठ' इसका बहुत बड़ा केन्द्र था।

'अघोर'-पन्थ का सिद्धान्त निर्गुण अद्वैत-वाद से मिलता-जुलता है।

अघोर-मन्त्र का विधान

तन्त्र-शास्त्र में 'अघोर-मन्त्र' का विशिष्ट विधान मिलता है। उसे यहाँ उद्धृत किया जाता है–

विनियोग–ॐ अस्य श्रीअघोर-मन्त्रस्य श्रीअघोर ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, श्रीअघोर-रुद्रः देवता, हुँ बीजं, ह्रीं शक्तिः, ममाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास–श्रीअघोर-ऋषये नमः शिरसि, त्रिष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे, श्रीअघोर-रुद्र-देवतायै नमः हृदि, 'हुँ'-बीजाय-नमः गुह्ये, 'ह्रीं'-शक्तये नमः पादयोः, ममाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

कर-न्यास–ह्रीं स्फुर स्फुर अंगुष्ठाभ्यां नमः। प्रस्फुर प्रस्फुर तर्जनीभ्यां स्वाहा। घोर-घोर-तर-तनु-रूप मध्यमाभ्यां वषट्। चट चट प्रचट प्रचट अनामिकाभ्यां हुँ। कह कह बम बम कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। बन्ध बन्ध, घातय घातय हुँ फट् करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्।

षडङ्ग-न्यास–ह्रीं स्फुर स्फुर हृदयाय नमः। प्रस्फुर प्रस्फुर शिरसे स्वाहा। घोर-घोर-तर-तनु-रूप शिखायै वषट्। चट चट प्रचट प्रचट कवचाय हुँ। कह कह बम बम नेत्र-त्रयाय वौषट्। बन्ध बन्ध, घातय घातय हुँ फट् अस्त्राय फट्।

'ध्यान' निम्न प्रकार करे–

काल-मेघ-निभं देवं, भीम-दंष्ट्रं त्रिलोचनम्,
भुजङ्ग-भूषणं रक्त-वसनालेप-शोभितम् ।
परशुं करवालं च, वाणाँस्त्रिशिखमेव च,
दधानं दक्षिणैर्हस्तैरूर्ध्वादि-क्रमतः परैः ।
डमरुं खेटकं चापं, नृ-कपालं च सततम्,
ग्रह-भूतादि-नाशकं, भजेऽघोर-रुद्रं सदा ।।

इस प्रकार ध्यान कर मानसोपचारों से पूजन कर 'जप' करे–

ह्रीं स्फुर स्फुर, प्रस्फुर प्रस्फुर, घोर-घोर-तर-तनु-रूप! चट-चट, प्रचट-प्रचट, कह-कह, बम-बम, बन्ध-बन्ध, घातय-घातय, हुँ फट्। (५१ अक्षर)

"

'अघोर-मन्त्र' के सम्बन्ध में श्रीपुष्पदन्ताचार्य ने कहा है–

''अघोरानां परो मन्त्रः।''

अर्थात् 'अघोर-मन्त्र' जैसा कोई श्रेष्ठ मन्त्र नहीं है। इस मन्त्र से साधक में प्रत्येक प्रकार की 'शक्ति' पैदा होती है।

'श्री श्रीविद्यार्णव-तन्त्र' के ३०वें श्वास में 'अघोर-मन्त्र' का विधान दिया गया है।

"

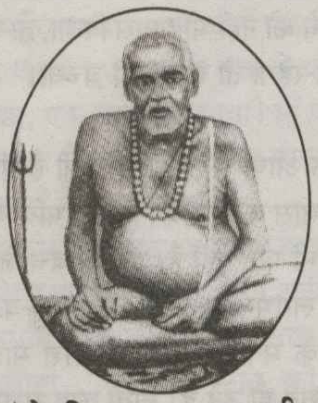

'तारा-पीठ' के सिद्ध महा-पुरुष श्री वामाचरण
(बाबा वामा-क्षेपा) की सत्य कथा (२)

पाप का प्रायश्चित्त

'वीर-भूमि' के महा-श्मशान-वासी 'वामा-क्षेपा' के एक भक्त के सन्तानें तो अनेक हुईं, किन्तु जीवित एक भी नहीं बची। अन्त में कोई उपाय न देखकर वह **बाबा की शरण** में आया। बोला–'बाबा! किसी-न-किसी तरह मेरे लिए एक सन्तान जीवित बचा दें।'

भक्त-वत्सल बाबा को दया आ गई। बोले–'अच्छा-अच्छा! किन्तु बच्चे को मुझे दान में देना होगा। जन्म के छः महीने के अन्दर तुम पति-पत्नी आकर बच्चे को दे जाना। क्यों?'

" यह तो हमारा परम सौभाग्य होगा कि हमारे बच्चे को आप दान में लें, उसे अपना दास बनाएँ।"

प्रसन्न-मुख भक्त घर को लौटा। अपनी पत्नी से कहा कि "**बाबा की दया** मिल गई। हमारा बच्चा इस बार बचेगा और **बाबा का दास** बनेगा।"

मृत-वत्सा स्त्री पुलकित हो उठी। उसकी सूनी गोद **बाबा की दया** से हरी-भरी हो जाएगी। बाबा को स्मरण कर वह उन्हें बारम्बार प्रणाम करने लगी।

भक्त पति ने आगे बताया, " किन्तु बाबा ने एक शर्त रखी है। बच्चे को उन्हें दान में दे देना होगा–छः महीने के अन्दर।"

"अरे, इसमें किन्तु-परन्तु की क्या बात? बाबा तो ठहरे ब्रह्मचारी! बच्चे को लेकर क्या करेंगे! तुम देखना, वे उसे ठीक कर वापस कर देंगे। इससे हमारा बच्चा जीवित तो बचेगा।"

"

'**वामा-क्षेपा**' का आविर्भाव उस युग में हुआ था, जब विदेशी विधर्मियों के अत्याचार और अनाचार के असह्य भार से भारत-वासी अत्यधिक प्रपीड़ित हो उठे थे। धर्माचार्यों ने उस प्रपीड़न से जन-साधारण की रक्षा–हेतु '**वीराचार**' का प्रवर्तन किया था।

शिला-मयी '**उग्र-तारा**' पीठ के पवित्र क्षेत्र में द्वारका नदी के तट-वर्ती महा-श्मशान में **बालक वामाचरण** के हृदय में '**माँ तारा**' की ज्योति ठीक उसी प्रकार और प्रायः उसी काल में प्रकाशित हुई, जिस प्रकार '**विशालाक्षी**' के मन्दिर में **बालक गदाधर** (**रामकृष्ण परमहंस**) के हृदय में '**माँ काली**' की प्रभा उद्भासित हुई थी। **श्री जगदम्बा** ने इन्हीं दोनों विभूतियों के द्वारा नवीन **भारत** के प्राण-वन्त एवं धर्म-निष्ठ बनने का मार्ग प्रशस्त किया।

"

"और यदि बच्चे को नहीं भी वापस किया, तो वह **तारा-पुर** में **बाबा की सेवा** में रहेगा। रहेगा तो हमारा ही बच्चा।"

❖❖❖

आज वही भक्त आया है। साथ में पत्नी है, जिसकी गोद में उनका दुलारा लगभग छः मास का बेटा है। निकट भविष्य में क्या होनेवाला है, इसका उन्हें तनिक भी पता नहीं है। पुत्र के बच जाने और उसके लाड़-प्यार के आनन्द में लगभग छः मास का अल्प काल पलक मारते बीत गया। इस बीच उनके मन में चिन्ता का लेश मात्र भी कभी नहीं रहा, किन्तु आज वे चिन्तित हो उठे हैं। बाबा क्या सचमुच ही उनके बेटे को ले लेंगे!

पिता अपने मन को स्थिर करने की चेष्टा कर रहा था, किन्तु माँ के धैर्य का बाँध टूटने लगा। वह सोचने लगी कि "कहीं बाबा ने बेटे को न लौटाया–तो उसके बिना कैसे रहेगी! फिर इस **श्मशान-भूमि** में, जहाँ कितने ही प्रकार के साँपादि विषैले जीव-जन्तु और भूत-प्रेतादि की विपत्ति सदा मँडराती है, उनका एक-मात्र लाड़ला सुरक्षित कैसे रहेगा!! नहीं, नहीं–बेटे का दान देना उसके लिए सम्भव नहीं। जब छः महीने वह बच गया, तब आगे उसके लिए कोई भय नहीं। बाबा को देने की अब क्या आवश्यकता?"

खुलकर उसने अपने पति से कहा कि "चलो, हम लोग लौट चलें। बेटे का दान देने की आवश्यकता नहीं।"

"क्या कहती हो तुम! **बाबा के आदेश** को हम अमान्य नहीं कर सकते। उनका दान उन्हें देना ही होगा।"

माँ ने बेटे को अपनी छाती से और भी जोरों से चिपका लिया। उसके मुख को चूम कर वह और भी विकल हो उठी। उसकी आँखों से आँसुओं की धार बह चली। रुँधे हुए गले से वह बोली, "तुम क्या एकदम निष्ठुर हो जाओगे? बच्चे को मैं एक क्षण के लिए भी अपनी गोद से विलग नहीं कर सकती। चलो, यह देश छोड़कर अपने घर लौट चलें। बाबा निश्चय ही इतने दिनों की बात भूल गए होंगे।"

परन्तु भक्त पति अचल, अटल रहा। वह समझ रहा था, उसकी पत्नी बाबा को क्या जाने! बाबा क्या इतने सहज हैं! उसने दृढ़ता-पूर्वक कहा कि "**बाबा का दान** बाबा को देना ही होगा। उसके बाद वे चाहे जो करें।"

"

वामा-क्षेपा का जन्म एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ। पितामह **रामानन्द चट्टोपाध्याय** के दो पुत्र-(१) **सर्वानन्द** और (२) **धर्मदास** हुए, जिनमें **धर्मदास** निस्सन्तान रहे। **सर्वानन्द** के चार कन्याएँ और दो पुत्र हुए। कन्याओं के नाम थे–(१) **जय-काली**, (२) **दुर्गा**, (३) **द्रव-मयी** और (४) **सुन्दरी**। **वामाचरण** और **रामचन्द्र** नाम के दो पुत्र थे। इनमें से **वामाचरण** ही बाद में '**वामा-क्षेपा**' और **तारा-पीठ** के '**भैरव**' के रूप में जगत्-विख्यात **सिद्ध महा-पुरुष** हुए।

"

बाबा के पास पहुँचकर प्रणाम कर दोनों एक ओर खड़े हो गए। स्मित-मुख से आशीर्वाद जताते हुए बाबा ने भक्त से कहा, "क्यों रे, बच्चे को ले आया है? अच्छा, एक काम कर बाबा! माँ की गोद से उसको ले ले और श्मशान के बीच में अकेले लिटाकर वापस आ जा। कोई पास में न रहे। जैसा कहता हूँ, वैसा ही कर।"

बेचारी माँ का शरीर सिहर उठा। श्मशान के बीच में रखा जायगा दूध-पीता बच्चा! उसके दुलारे को सियार, साँप आदि काट खाएँगे। ना-ना-ना, उसके रहते उसके बच्चे को कौन श्मशान में लिटा सकता है!

बाबा फिर बोले, "क्यों रे, काठ की तरह खड़ा है? मेरा बच्चा मुझको दे। इस समय जो कहता हूँ, वही कर। क्या मेरा कहा नहीं करेगा?"

बाबा की बात से माँ बेचारी और भी दुःखी हो उठी। भयङ्कर वीभत्स श्मशान उसकी आँखों के आगे घूमने लगा, जहाँ दिन में भी जाते लोग सिहरते हैं। चारों ओर भूखी शिवाएँ मांस के लालच में घूम रही हैं; गिद्धों की आँखें लाशों पर जमी हुई हैं और कुत्ते-कुतियों के समूह भयानक शब्द करते हुए हड्डियाँ चबा रहे हैं! अचानक ही उसके मुख से चीख निकल पड़ी–"ना, ना, मैं अपने बेटे को नहीं दूँगी-नहीं दूँगी।"

माँ की चीख से बाबा मानों और भी कठोर हो उठे। रूखे स्वर में फिर बोले-"शीघ्र हमारा बच्चा हमको दे। यदि भलाई चाहता है, तो देर मत कर।"

भक्त पिता अब तक चुपचाप जड़-वत् खड़ा था। बाबा की उक्त बात सुनकर वह और स्थिर न रह सका। लपक कर उसने माँ की गोद से बच्चे को ले लिया और दूसरे ही क्षण उसे उसने बाबा के चरणों में डाल दिया।

दुःखी माँ मूर्छित होकर गिर पड़ी। बाबा ने एक अन्य भक्त को आदेश दिया कि "बच्चे को श्मशान में लिटा आओ।"

कुछ ही क्षणों के बाद माता को होश आया। बाबा की आज्ञा से पति-पत्नी दोनों को माँ के मन्दिर में जाना था। बाबा बोले, "मेरे आदेश के बिना मन्दिर छोड़कर कहीं मत जाना।"

धीरे-धीरे दिन बीता; सन्ध्या आई, शङ्ख और घण्टे की ध्वनि से मन्दिर गूँज उठा। माँ की आरती पूर्ण हुई। इतना समय बीत गया, सन्तान अकेली कहाँ पड़ी है! बाबा का कोई आदेश भी नहीं आया! स्नेह-मयी माता बच्चे के शोक में कभी मन्दिर के अन्दर, तो कभी मन्दिर के बाहर आती-जाती है।

"

श्री वामा-क्षेपा का आविर्भाव जिस काल में हुआ था, वह एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। अंग्रेजों की प्रभुता के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता वङ्ग प्रदेश में अपनी जड़ें जमाने का घोर प्रयास कर रही थीं। इस प्रयास में प्रतिरोध के लिए अनेक वीराचारी शाक्त महा-पुरुषों का आविर्भाव वङ्ग प्रदेश में हुआ।

ब्रह्मचारी श्री लोकनाथ, परमहंस श्री रामकृष्ण और ब्रह्मचारी श्री वामाचरण (बाबा श्री वामा-क्षेपा)–इन तीनों महात्माओं का एक ही लक्ष्य था–म्लेच्छ-प्रभाव का निर्मूलन। तत्कालीन दुःख-दुर्दशा से बचने का एक ही उपाय उन्होंने वङ्ग-वासियों में प्रचलित किया और वह उपाय यह था कि–

डूब देरे मन काली बोले-
हृदि रत्नाकरेर अगाध जले।

अर्थात् 'काली - काली' कहकर अपने हृदय-सागर के अगाध आनन्द-सागर में मग्न हो जाओ।

"

"

अंग्रेजी प्रभुता से आक्रान्त वङ्ग राजधानी '**कलिकाता**' नगरी के निकट रहते हुए **परमहंस श्री रामकृष्ण** ने '**शक्ति-पात**' द्वारा भारत के भावी नागरिकों के पुनरुत्थान के महत्-कार्य का श्रीगणेश **स्वामी विवेकानन्द** के द्वारा किया और एक गाँव के बीहड़ श्मशान में रहकर **श्री वामाचरण** ने समस्त दीन-दुखी, ज्ञान-विहीन देश-वासियों के उद्धार के लिए **श्मशान-वासिनी जगदम्बा** को तार-स्वर से पुकारा-'**माँ तारा-तारा-तारा?**'

इसी का सुफल यह हुआ कि बङ्गाल में स्थान-स्थान पर '**शाक्त-पीठ**' की स्थापना हुई और '**मातृ-पूजा**' की ऐसी धारा बह चली कि सर्व-साधारण लोग उसमें आकण्ठ आप्लावित हो उठे। **श्मशान** में **जगदम्बा की जय-जयकार** और '**जय-जय गुरु-देव**' की ऐसी ध्वनि गुञ्जायमान हो उठी कि निर्जीव आबाल-वृद्ध-वनिता जीव-वन्त हो उठे।

"

"अब तक क्या वह बचा होगा? निश्चय ही क्या शिवाओं और कुत्तों ने उसके चिथड़े न कर डाले होंगे!..." मन में इस प्रकार की दुश्चिन्ताओं के आते-जाते वह विकल होकर **श्मशान** की ओर भाग चली-थके-हारे पति के रोके भी वह नहीं रुकी, किन्तु **मन्दिर** के बाहर पग-डण्डी पर आते ही उसने देखा-भैरव-वाहन की तीक्ष्ण आँखें उसे घूर रही हैं! भय से उसके कदम जहाँ-के-तहाँ रुक गए। उसकी मनो-व्यथा कण्ठ से फूट पड़ी-"मेरा लाल! मेरा लाड़ला दुलारा बच्चा कहाँ?..."

उसकी चीख के ऊपर से मेघ-गर्जना के समान **बाबा की वाणी** गूँज उठी, "कौन जाता है-ओ बेटी, खबरदार!'

बाबा के पैरों पर बेचारी माँ गिर पड़ी-"बाबा! आपके पैर पड़ती हूँ। हमारे बच्चे को लौटा दीजिए।"

बाबा ने इस बार अभय-दान दिया, "माँ जा, तू कोई चिन्ता न कर। तेरी गोद में ही बच्चा वापस दूँगा।"

बच्चा वापस मिलेगा, सुनते ही माँ आनन्दित हो उठी। चुपचाप वह **मन्दिर** में पति के पास वापस चली गई।

तीन-चार घण्टे और बीते। काली अँधियारी रात-**श्मशान** में जलती चिताओं की धूः-धूः की भयानक ध्वनि! किन्तु उस तमसाच्छन्न **श्मशान** में **नादेश्वर क्षेपा बाबा** अकेले बैठे मनसानन्द में विभोर गाते जा रहे थे-

ये तालुके रानीर नाम गो **तारा सुन्दरी**,
ओ किल मोक्तार आछे कत **कुबेर** नाम भाण्डारी।
श्मशान-भूमि आलो करे बुकेर छेले कोले निए।
स्नेह-मयी शिला-मयी प्राण-मयी **शङ्करी तारा सुन्दरी**।।
पागल '**वामा**' माँ! तोर नामे भासिए दिल नाय।
शुधू **तारा-तारा-तारा** बोले, रानीर नाम इ गाय।।
आमरा माँ! तोर खास तालुके बसत करि मनेर सुखे।
माँ! तोर **चरण-चिह्न** बुके एके,
किनवो माँ! तोर जमिदारी।।

गीत समाप्त होने पर **बाबा** मन-ही-मन "**श्रीदुर्गा! श्रीदुर्गा!**" नाम-जप करने लगे।

❖❖❖

"रात तो काफी बीत गई! अब बच्चे को ले आओ", बोले **बाबा** एक भक्त की ओर देखकर। वह गया और अक्षत-शरीर कोमल शिशु को अपनी गोद में उठा लाया। इतने समय तक **बाबा** का '**कालू**' कुत्ता शिशु पर पहरा दे रहा था। जब तक शिशु **श्मशान** में रहा, उसकी सजग दृष्टि बराबर उस पर जमी रही; कोई विपत्ति उसके पास आने नहीं पाई।

बच्चा आनन्द से हाथ-पैर उछालता वहाँ पड़ा रहा! उसे भूख-प्यास किसी ने नहीं सताया। एक बार भी वह रोया नहीं!

बाबा ने बच्चे को गोद में लिया और स्नेह-कातरा माँ के पास जा पहुँचे। बोले-

"यही तो है तेरा बच्चा, बेटी! ले इसे, अब "**तारा-तारा**" नाम जपते अपने घर वापस जा।"

पिता-माता दोनों ही ने **बाबा के चरणों** पर गिर कर स-भक्ति प्रणाम किया और वहाँ से विदा हुए।

मार्ग में चलते-चलते स्त्री ने जिज्ञासा की, "अच्छा, यह तो बताओ! **बाबा** ने इतना कष्ट क्यों दिया? बच्चे को **श्मशान** में न रखवाते, तो क्या बिगड़ जाता?"

स्वामी ने मुस्कुराकर उत्तर दिया, "यह सब मैं क्या जानूँ! केवल इतना भर समझता हूँ कि आज **बाबा की कृपा** से हमारे **पापों का प्रायश्चित्त** हो गया।"

❖❖❖

साधना के लक्षण

'**साधना**' का प्रथम प्रत्यक्ष फल होता है-'**स्वास्थ्य**'-आनन्द-मय मानसिक अवस्था। सकल विषयों की अन्दर में परि-समाप्ति। महा-दुःख का व्यापार होने पर भी साधक के प्राण में उस दुःख का कारण-ज्ञान उद्भासित हो उठता है--जिसका फल होता है '**आनन्द**'। '**साधना**' के ये स्पष्ट लक्षण हैं।

"

परमहंस रामकृष्ण ने वङ्ग-समाज के मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को शक्ति-मन्त्र में दीक्षित कर उन्हें '**वीराचार**' की ओर मोड़ दिया, जिससे वे ईसाई संस्कृति के भारतीय संस्करणों-'**ब्रह्म-समाज**' आदि के प्रभाव से बच गए। इसी प्रकार समाज के निम्न श्रेणी के लोगों के उद्धार हेतु **ब्रह्मचारी श्री वामाचरण** का आविर्भाव हुआ और उनकी भी वैसी ही लीला रही।

जिस प्रकार '**आनूड़**' ग्राम के छोटी जातिवालों की देवी '**विशालाक्षी**' के मन्दिर में बालक **गदाधर** के हृदय में **माँ काली** का आविर्भाव हुआ था, उसी प्रकार '**द्वारका नदी**' के किनारे महा-**श्मशान** में बालक **वामाचरण** के अन्तःस्थल में **माँ तारा** अवतरित हुईं। **जगदम्बा** ने इन दोनों महा-पुरुषों के माध्यम से **भारतीय सनातन धर्म और संस्कृति की रक्षा** किस अनूठे ढङ्ग से की, यह सहृदय विचारक ही अनुभव कर सकते हैं।

"

अघोरी वामा-क्षेपा के सिद्धोपदेश

♦ ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अणु-परमाणु में माई की ही मूर्तियाँ बिखरी हुई हैं। हम कलि-युगी जीव हैं। हमारे चारों ओर माँ-बाप, भाई-बहन आदि परिजन हैं, किन्तु उनमें से जिसे नहीं जानते हो, उसकी ओर तुम्हारी आसक्ति नहीं। इसलिए **दुर्गा, शिव, नारायण** आदि की मूर्तियों को देखो और उनकी उपासना करो। आँख मूँद कर **निराकार का ध्यान** तथा आँख खोलकर **साकार पर त्राटक** करने से अनन्त लाभ पाओगे।

♦ 'मैंने पाप किया है', ऐसा समझ कर निराश मत हो। माई के नाम के आगे पाप कहाँ है? मैं तो **माई का नाम** लेकर ही सुख की नींद सोता हूँ। उस सुख की तुलना में **निर्वाण** का बाबा भी नहीं आ सकता।

♦ **वेद** और **तन्त्र** का वही सम्बन्ध है, जो सम्बन्ध **जीवात्मा** से **परमात्मा** का है।

♦ **मुक्ति** पाने के लिए माई के सामने छोटे शिशु की तरह हाथ-पैर पटक-पटक कर रोओ। तेरा बेड़ा पार हो जायगा।

♦ **पुराण** के पहले **तन्त्र** की रचना हुई है। **तन्त्र** के वचनों पर आस्था रखो।

♦ **भोग** के बाद ही **मोक्ष** पाने का अधिकार होगा। **एकाएक मोक्ष** पाने के लिए बढ़ोगे, तो पतन हो जाएगा। चींटी वृक्ष पर चढ़ने के समय जड़ से ही वृक्ष के शिखर पर जाती है।

♦ तन्त्र में वर्णित '**पञ्च-मकार**' को तात्त्विक नजरों से देखो। ये **भ्रष्ट** होने के लिए नहीं, **मुक्त** होने के लिए हैं। '**पञ्च-मकार**' पर **विजय** पानेवाला ही '**पञ्च-तत्त्व**' पर **विजय** पाता है।

♦ '**ओ रे! भोग-योग एक सङ्गे कर। कलिर साधना एई**'-अर्थात् वर्तमान **कलि-युग की आध्यात्मिक साधना** '**भोग**' और '**योग**' का **समन्वय** करना है, जिसका क्रियात्मक स्वरूप **तन्त्रोक्त** '**शक्ति-साधना**' में ही है। एक-मात्र यही साधना **भोग-मोक्ष-दायिनी** है।

♦ सभी प्राणी '**शक्ति**' के प्रतीक हैं, '**शक्ति**' के बिना सभी शव हैं। **भगवती शक्ति-मातृत्व की उपासना** अति प्राचीन काल से सिद्धि-दायिनी है।

❖❖❖

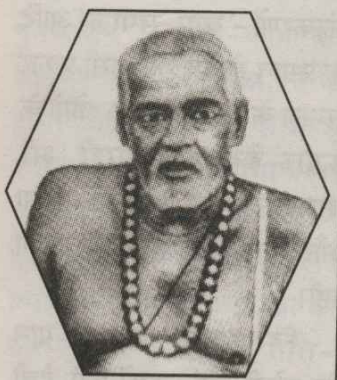

जीवन को **ब्रह्म-मय** होना है। **ब्रह्म-ज्ञान** तभी होगा, जब '**अहङ्कार**' को मिटा देंगे।

अमर बीज का ज्ञान जो,
शिष्य! सुनावों तोहिं।
लघु-विशाल नाहीं कुछ,
तू आतम-रत होहिं।।

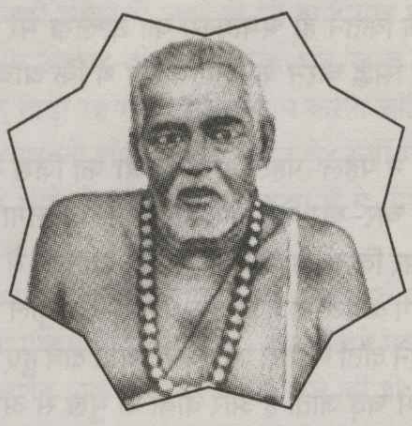

'तारा-पीठ' के सिद्ध महा-पुरुष श्री वामाचरण
बाबा वामा-क्षेपा की सत्य कथा (३)

तारापुर का महा-मानव

तारापुर गाँव की सीमा के पास पहुँचते-पहुँचते पश्चिम दिशा रक्ताभ हो उठी। सुदूर प्रदेशों में उठते हुए गो-धूलि के बवण्डर उस लालिमा को मलिन करते-से दिखाई देने लगे। मैंने सोचा, 'चलो, अच्छा, ही हुआ। रात होने के पहले ही मञ्जिल पर पहुँच गया।'

अचानक **तारापुर** की बस्ती के धूम्राच्छादित वायु-मण्डल के बीच में से, सुवर्ण-रेखा के समान कान्तिमान् किसी मन्दिर का शिखर मुझे दिखाई दिया। मैं समझ गया, **मन्त्र-तन्त्र-सिद्ध परम कौल वामा-क्षेपा** की माँ तारा के प्रतिष्ठित पीठ की ही, यह एक दिव्य झलक है। एक क्षण के लिए मेरे पैर ठिठक गए और कर-बद्ध होकर मस्तक झुकाकर, मैंने उस दिशा को मन-ही-मन प्रणाम किया। मैं फिर बढ़ चला।

क्षेपा बाबा के सम्बन्ध में बहुत दिन हुए, एक धर्म-बन्धु से सुनने को मिला था। उन्होंने जो वर्णन उनका उस समय किया था, वह इस समय मेरे सामने साकार होता-सा मालूम होने लगा। साथ ही रोमाञ्च से सारा शरीर अचानक काँप गया। वह वर्णन ही ऐसा था!

मेरे उन धर्म-बन्धु का कहना था कि-'**क्षेपा बाबा** तो अति रहस्य-मय हैं। उनको देखकर बड़े-से-बड़े धैर्यवान् का भी हृदय ठिकाने नहीं रह सकता। उनका स्वरूप ही विलक्षण हो, यह नहीं-उनकी लीलाएँ भी किसी मनुष्य को चक्कर में डाल देने के लिए काफी हैं।' इतना कहकर उन्होंने

"

वामा-क्षेपा

श्री '**वामा - क्षेपा**' का आविर्भाव बङ्गाल के '**वीर-भूमि**' नामक जिले में हुआ था। इस जिले का अपना महत्त्व रहा है। अति प्राचीन काल से यहाँ '**वीराचार**' की '**साधना**' प्रचलित रही है और बहुत से साधकों ने '**वीर-भाव**' से उपासना कर यहाँ सिद्धि प्राप्त की है। इसी से इस जन-पद का नाम ही '**वीर-भूमि**' पड़ गया।

"

"

वीर-भूमि

भारत-भूमि का बङ्गाल प्रदेश **तन्त्र-विद्या** का केन्द्र रहा है। इस सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि-'**वङ्गेनोत्पादिता विद्या, मैथिलेन च पालिता**' अर्थात् वङ्ग या बङ्गाल प्रदेश में '**तन्त्र-विद्या**' की उत्पत्ति हुई और मिथिला-वासियों ने इस विद्या का पालन किया, इसका प्रचार-प्रसार किया। ऐसे ही **तान्त्रिक वङ्ग-प्रदेश** के पश्चिमी भाग के '**वर्द्धमान**'-प्रभाग का एक जिला है-'**वीर-भूमि।**'

माहेश्वर - कृत '**कुल-पञ्जिका**' में इसके प्रति लिखा है-

वीर-भूः काम-कोटी स्यात्,
प्राच्यां गङ्गा जयान्विता ।
प्रारण्यकं प्रतीचं तु,
देशो दार्षद उत्तरे ।
विन्ध्या-पादोद्भवा नद्यः,
दक्षिणे बहव्यः संस्थिताः ।।

नाम से ही स्पष्ट है कि इस जिले में **शाक्त-धर्म** के प्रसिद्ध '**वीराचार**' की साधना करनेवाले साधक महा-पुरुषों की प्रधानता रही है।

"

क्षेपा बाबा के कितने ही चमत्कारों का उल्लेख मेरे सम्मुख किया, जो वास्तव में यह सिद्ध करने के लिए काफी थे कि **बाबा महा-मानव** भी थे।

उक्त बन्धु ने पहले-पहल **क्षेपा बाबा** का जिस रूप में दर्शन किया था, वही दृश्य बार-बार मेरी कल्पना में नाचने लगा कि-'**क्षेपा बाबा** अपने आसन पर विलक्षण भाव से बैठे हैं; इतने ही में निकट ही **श्मशान** की दिशा से भाग कर आता हुआ एक काला-बिल्कुल काला कुत्ता दिखाई देता है, जो अपने दाँतों में मांस का एक लोथड़ा दाबे हुए है। वह पास आकर बाबा की गोद में चढ़ जाता है और बाबा के मुख से अपना मुख सटा देता है। बाबा जैसे-के-तैसे बैठे उसके मुख के मांस को अपने मुख में लेते हैं और कुत्ता कहता सुनाई देता है-'**खा बाबा, खा!**'

अपनी कल्पना के इस चित्र की मन-ही-मन मीमांसा करता हुआ मैं **तारापुर** के सीमा-प्रदेश को पार करने लगा।

क्षेपा बाबा की यह लीला उनके यश के सर्वथा अनुरूप ही तो है। सब ही प्रकार से जो '**पाश**'-मुक्त हो चुका है, वही **महा-पुरुष** इस भाँति '**घृणा**'-रहित होकर व्यवहार कर सकता है। कैसा ही पदार्थ क्यों न हो, कितना ही घृणोत्पादक जीव क्यों न हो और कैसी ही वीभत्स अवस्था क्यों न हो-'**पाश**'-मुक्त **सिद्ध साधक** में '**घृणा**' का '**भाव**' लक्षित भी नहीं हो सकता। सचमुच ही ऐसे **महात्मा** का दर्शन मानव जीवन को धन्य कर देने की सामर्थ्य रखता है।

क्षेपा बाबा के पुण्य दर्शनों के लिए मैं अचानक ही उतावला हो उठा। जिस चिर-अभिलाषा की पूर्ति के लिए, सैकड़ों मीलों की यात्रा करके, मैं **तारापुर** के इस पवित्र स्थान पर आया था, वह एक-बारगी ही तीव्र हो पड़ी। मैंने सँभल कर देखा कि मैं वर्षा के कारण कीचड़ से भरे हुए पथ से **तारापुर गाँव** की बस्ती में प्रवेश कर रहा हूँ। **तारापुर गाँव** की दुर्गन्ध-पूर्ण कीचड़ से भरी हुई गलियों को किसी तरह पार करता हुआ, मैं निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचा। मुझे बताया गया था कि मन्दिर से बिलकुल सटी हुई कुटिया ही **वामा-क्षेपा** का निवास-स्थान है और अब मैं उनके सम्मुख था।

मैंने देखा कि एक चौपार में एक वृद्ध उच्चासन पर विराजमान हैं। वृद्धावस्था के कारण ह्रासोन्मुख होता हुआ भी उनका शरीर, तेज की चमक

से परिपूर्ण था। उनकी झाँकी मैं अभी ले भी नहीं पाया था कि एकाएक उनकी दृष्टि मेरी ओर उठ गई–विशाल विस्तृत नेत्र, लाल आभा से युक्त–देखकर मैं अवाक् खड़ा रह गया। मुझे प्रणाम करना चाहिए था, वह भी मैं भूल गया। दो-चार जो लोग वहाँ उपस्थित थे, उन्हीं में से एक ने जब मेरे निकट आकर धीमे से कहा–'**क्षेपा बाबा** हैं ये, प्रणाम नहीं किया आपने?'

तब सजग हुआ मैं और मैंने आगे बढ़कर भक्ति-पूर्वक उस दिव्य मूर्ति के चरणों में अपना प्रणाम निवेदित किया। उस मूर्ति में एक ऐसा विलक्षण आकर्षण था कि दर्शन पाकर बराबर देखते रहने की ही इच्छा होती थी, प्रणाम आदि शिष्टाचार का स्मरण तक न रह जाता था।

उन्होंने सरल भाव से पूछा–कहाँ से आते हो बाबा?

मैंने अपना परिचय दिया। कुछ समय के बाद वे उठकर उस ओर चल पड़े, जहाँ दो-एक जलती हुई चिताएँ बता रही थीं कि वह '**श्मशान-भूमि**' है। मैं भी उठ पड़ा और '**सन्ध्या-कृत्य**' से निबटकर विश्राम का स्थान ढूँढ़ने लगा।

❖❖❖

तड़के ही उठकर मैं '**श्मशान**' की ओर से निबट आया। वह '**श्मशान**' तारापुर से कुछ नीचे की ओर स्थित है। **बाबा की कुटिया** से इसका प्रायः पूरा भाग दिखाई देता है। वापस आकर मैं मन्दिर के बगल के सरोवर में स्नानादि के लिए पहुँचा। इस बीच में मैंने उस स्थान के महत्त्व को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लिया था। मन्दिर प्राचीन था, उसके प्रत्येक अंश में वङ्ग-देश की विशिष्ट '**स्थापत्य-कला**' छलक रही थी। खुदाई की कारीगरी उसमें उतनी नहीं थी, अनेक प्रकार की प्राचीन ईंटों को विभिन्न प्रकार से जड़कर उसका निर्माण किया गया था। वहाँ एक विशाल प्राङ्गण भी था और चारों ओर थी प्राचीर।

इसमें सन्देह नहीं कि यह स्थान अत्यन्त प्राचीन, सुरक्षित और स्वास्थ्य-पूर्ण मुझे लगा। मैं इसे जितना ही देखता, उतना ही आनन्द का अनुभव करता। मन में आया भी कि 'कुछ समय तक इस स्थान में अवश्य रहूँगा।'

सरोवर पर पहुँचकर मैंने देखा कि मैं वहाँ अकेला नहीं हूँ। श्याम वर्ण, मध्यम आकार, दीर्घ केश, दाढ़ी-युक्त मुख-मण्डल, बड़े-बड़े उज्ज्वल

“

वङ्गाल के दक्षिण में रहकर **परमहंस श्री रामकृष्ण** ने पाश्चात्य संस्कृति के दम्भ को चूर-चूर कर दिया और अपने शिष्य **विवेकानन्द** के द्वारा उन्होंने भारत को पुनः मानव संस्कृति के केन्द्र-रूप में प्रतिष्ठित करने में सफलता प्राप्त की। इसी प्रकार **बाबा श्री वामा-क्षेपा** ने उपेक्षित, दुःखी, अछूत और अपमानित जन-समाज को जाग्रत् करने का महत्-कार्य सम्पादित किया।

”

"

अंग्रेजों की कूट-नीति भारत के इतिहास में प्रसिद्ध रही है- **'डिवाइड एण्ड रूल'**-विभाजन करो और शासन करो। इसी कूट-नीति का शिकार होकर १८वीं सदी के मध्य में भारतीय समाज छिन्न-भिन्न होकर सर्वथा असहाय हो रहा था। सामाजिक नेता तक भयभीत हो उठे थे। तभी **बाबा श्री वामा-क्षेपा** के अमृत-मय उपदेश उन्हे मिले-

मनुष्य में अभय देने की शक्ति नहीं,
अभय तो देती है अभया।
दुःख अपनी चेष्टा से जाता नहीं,
पुकारो-पुकारो माँ को ।
अरे, क्यों मरते हो हाय-हाय कर,
जाओ मन्दिर और पुकारो माँ को,
देगी वही प्राण-भिक्षा ।

"

चक्षुवाला एक व्यक्ति सरोवर के तीर बैठा है। पूछने पर मालूम हुआ, उसका नाम है-'**नगेन पण्डा**'। **नगेन पण्डा** से बातचीत होने लगी। बातचीत का सारांश यह कि **तारापुर** में पण्डा लोगों का विशेष प्रभाव है और **नगेन** उनमें प्रमुख हैं। यह कहने की आवश्यता नहीं कि ये सब लोग पक्के **तान्त्रिक** हैं। सारे दिन चरस-गाँजा का इनका नशा चलता है और रात्रि में '**कारण**' का उपयोग होता है। इनके गले में '**रुद्राक्ष**' की माला होती है और हाथ में '**गो-मुखी**'।

क्षेपा बाबा की कुटिया का प्रबन्ध एक नौजवान के हाथ में है, जो गौर-वर्ण, छोटी-छोटी आखोंवाला और शरीर से रोगी है। कुटिया की झाड़-पोंछ से लेकर गाँजा आदि की व्यवस्था का भार उसी पर है। इन सब कामों के बदले में मिलता है उसे **बाबा का पवित्र आनन्द-मय 'प्रसाद'**।

सरोवर में स्नान करके मैं शीघ्र ही प्रातः-कृत्य से निवृत्त हो गया। यह मैं सुन ही चुका था कि दोपहर के बाद **माँ के मन्दिर** में प्रसाद मिलने का प्रबन्ध है। अतएव काफी अवकाश देखकर मैं '**श्मशान**'-**भूमि** के दर्शनार्थ चल पड़ा। '**श्मशान**' वास्तव में बड़ा लम्बा-चौड़ा अति विस्तृत निकला, जैसा कि मैंने दूर से देखकर अनुमान कर रखा था। बीच-बीच में अनेक प्रकार के झाड़ों की अधिकता थी। नीम और पीपल के वृक्ष भी अनेक थे। मार्ग से लेकर नदी के किनारे-किनारे '**श्मशान-भूमि**' फैली हुई थी। चारों ओर '**कपाल**' और **अस्थि-खण्ड** बिखरे दिखाई दे रहे थे। **वामा-क्षेपा** की ख्याति के अनुरूप ही यह उनकी **साधना-स्थली** थी। यही सब देखने-सुनने में मैंने सारा दिन काट दिया।

रात्रि होने पर **बाबा** के आश्रम-कुटीर के बरामदे में ही एक कोने में मुझे सोने के लिए स्थान मिल गया; दूसरे कोने में **बाबा** के घर का वह युवा अध्यक्ष सोया।

❖❖❖

सबेरे-सबेरे **क्षेपा बाबा** के दर्शन सरोवर के किनारे पाकर मैंने अपने को कृतार्थ माना। **बाबा** के साथ कुछ पण्डे लोग और न जाने कौन दो-तीन व्यक्ति थे। कई दिन से **बाबा** की तबियत ठीक नहीं थी, आज वे स्नान करेंगे। जैसे एक बच्चे को नहलाया-धुलाया जाता है, बस, वैसा ही **बाबा का स्नान** हुआ। सब लोगों ने मिलकर **बाबा** को स्नान कराया। स्नान हो जाने के बाद **बाबा** धूम्र-पान करने लगे।

आज भी सारे दिन भक्तों का ऐसा ताँता लगा रहा कि उनके समीप शान्ति-पूर्वक कुछ कहने या कुछ सार की बात सुनने का मौका नहीं मिला। सन्ध्या-समय जब **बाबा** विश्राम कर रहे थे, मैं भी उनके समीप जाकर प्रणाम-पूर्वक वहीं बैठ गया। पण्डा आदि अन्य लोग पहले से वहाँ बैठे ही थे। थोड़ी ही देर हुई होगी कि एक व्यक्ति ने आकर कहा–बाबा! बाबू आए हैं, उनकी मैया (पत्नी) भी आई हैं, साथ में बच्चे को भी लाए हैं, आपको दिखाने। मन्दिर में थे, अब इसी जगह आ रहे हैं।

बाबा चुप रहे, कुछ भी न बोले–न राम न गङ्गा! दो-ही-तीन क्षण बाद एक सपत्नीक सज्जन गोद में एक साल का दुबला-पतला रुग्ण बालक लिए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने **बाबा के चरणों में प्रणाम** किया।

अब **बाबा** बोले–छोकरे को तू ले ही आया! किन्तु इस तरह लाने से क्या, तुझे उसको हमें दे देना पड़ेगा।

उन सज्जन ने **बाबा** के चरणों में मस्तक लगाकर बड़े कातर कण्ठ से उत्तर दिया-'**बाबा**, यह आप ही का तो है, हमारा नहीं। जो आपकी इच्छा, वही होगा **बाबा**…'

'अच्छा, अच्छा! ठीक तो बोलता है। अब जो कहता हूँ–वह कर। छोकरे के सब कपड़े खोलकर अलग कर दे और इसे नङ्गा वहाँ **श्मशान** में मिट्टी के ऊपर लिटा आ–जा।'

सुनते ही बालक की जननी अपने को सँभाल न सकी, रो उठी। परन्तु पति के कलेजे में बल था। उसने कहा–'रोती क्यों है। जहाँ के लिए कहा है, वहीं इसे लिटाना होगा–चल उठ…'

स्नेह-कातरा जननी रुँधे गले से गिड़गिड़ाकर पति से बोली–'वहाँ सियार, कूकुर आदि घूमते रहते हैं, किसलिए वहाँ…?'

पति ने उसकी बातों पर कुछ भी ध्यान न देकर इतना ही कहा–'चल-चल, उठ' और छोकरे को गोद में लेकर वह चल पड़ा। जननी भी उठकर खड़ी हो गई, पर **बाबा** ने उससे कहा–माँ, तू वहाँ क्यों जाएगी! तुम यहीं बैठो। बाबू अभी आता है, साथ ही जाना।

वह बैठ गई और घूँघट की आड़ में अश्रु-पात करने लगी। कुछ ही देर में उसका पति लौट आया। तब **बाबा** ने कहा–अब तुम इस स्थान से चले जाओ, जाकर **मन्दिर** में रहो।

उसने **बाबा** को पुनः प्रणाम किया और धीरे-धीरे पत्नी सहित वहाँ से चला गया। यह सारी घटना मैं स्तब्ध भाव से देखता रहा। इसी समय **बाबा** एक व्यक्ति को लक्ष्य कर बोले–देख तो बाबा, **केलो** कहाँ है?

"

बाबा श्री वामा-क्षेपा का अर्थ-सम्बन्धी उपदेश निराला ही होता था। **परमहंस श्री रामकृष्ण** कहते थे कि–

'टका (रुपया-पैसा) मिट्टी है, मिट्टी ही टका है।'

वामा-क्षेपा कहा करते थे कि–

'टका बोले टं टं-त्वं त्वं-तारा तारा!'

"

"

वामा-क्षेपा जैसे वीराचारी महा-पुरुषों ने देश के प्रत्येक मनुष्य में शक्ति का सञ्चार करने का अभूत-पूर्व प्रयास किया। **'मातृ-पूजा'** का उपदेश करते हुए **वामा-क्षेपा** कहते हैं कि-

'शरीर ठीक रखो, नहीं तो शक्ति बढ़ेगी नहीं। क्योंरे साले, माया का त्याग करेगा? माया ही तो माँ है, जिसे माया नहीं है वह है राक्षस! जो माया त्याग करता है, वह पतित है। माया-त्याग का मतलब है माँ का त्याग! माया की जय बोलो। ...कोई कष्ट में है, देखकर भी- माया त्याग कर चल देता है!- तू क्या मनुष्य है? उसके दुःख दूर करने की चेष्टा कर। फिर उसके भाग्य में जो है, वही होगा।'

इस प्रकार अपने सम्पर्क में आनेवाले लोगों को **'शक्ति-साधना'** के प्रति सदैव उन्मुख करते रहते थे। **'वीर-भूमि'** के साक्षात् भैरव-स्वरूप ही थे **'वामा-क्षेपा।'**

"

वह व्यक्ति उठकर बाहर गया और ऊँचे स्वर में **'केलो'-'केलो'** कहकर पुकारने लगा। थोड़े समय में वह लौट आया, साथ में था उसके एक काला कुत्ता। यह कुत्ता भयानक रूप से काला था, गाँव के अधिकांश कुत्तों की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा था और आखें इसकी जल-सी रही थीं। इसने पास आकर **बाबा** की गोद में अपना मुख रख दिया। **बाबा** ने उसकी कनपटियों को सहराकर उसके प्रति आदर का सा भाव दिखाया। फिर जैसे किसी सेवक से कहा जाए, उसी प्रकार उन्होंने उसे आदेश दिया- जा **केलो**, तू **श्मशान** में जाकर छोकरे को देख!

सुनते ही कुत्ता मुड़कर **श्मशान** की ओर चला गया। **बाबा** चुप होकर बैठे रहे। जितने व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे, वे सब एक प्रकार के आतङ्क से अवाक् थे-किसी के मुख से एक शब्द तक नहीं निकला। मेरे मन में एक बार आया कि 'चलूँ-देखूँ, छोकरा किस रूप में **श्मशान** में पड़ा है!' किन्तु कौतूहल होते हुए भी विस्मय और आतङ्क ने मुझको कुछ ऐसा जकड़ लिया कि मैं उठ नहीं सका।

दोपहर के बाद प्रसाद पाने के समय जब सब लोग एकत्र हुए, तब मैंने देखा, उक्त सज्जन भी प्रसाद पाने के लिए उपस्थित हैं। उस समय उनके **मुख-मण्डल** पर विषाद की छाया स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वे मेरे पास ही बैठे थे और बातचीत होने पर सहज ही मुझे उनका परिचय मिल गया। कलकत्ते के रहनेवाले थे और रेल में काम करते थे। सन्तान होती थी, पर बचती नहीं थी। चार बच्चे शैशव ही में मर चुके थे- इस बार **बाबा** के पास लाए थे। वे स्त्री-पुरुष गत सात वर्षों से **बाबा** के शिष्य थे! **बाबा** ने कह रखा था कि 'सङ्कट होने पर छोकरे को लेकर आना।'

डेढ़ बजे के लगभग प्रसाद पाने के बाद मैं **बाबा** की कुटिया में आकर अपने स्थान में पड़ रहा। उस समय **बाबा** अपनी शैय्या पर विश्राम कर रहे थे। दो-तीन जन और भी उपस्थित थे, पर सब लोग शान्त थे। कुटिया के द्वार के पास ही चार कुत्ते लेटे हुए थे। एक सादे वर्ण का था, एक लाल, एक हल्दी के रङ्ग का और एक मट-मैला। इन कुत्तों पर **बाबा** का असीम स्नेह देखने में आता था। इन सबके नाम भी **बाबा** ने रख छोड़े थे। जैसे- **केलो, भूलो, श्वेत-फूलि, लालि** आदि।

प्रायः तीन बजे **बाबा** उठे, गाँजा चलने लगा। मैं भी गोष्ठी के सत्सङ्ग के लोभ से पहुँच गया था। मेरी ओर सङ्केत करके **बाबा** ने कहा-उसे भी दिया जाए।

इस पर **नगेन्द्र पण्डा** बोल उठे--वे यह सब नहीं लेते।

बाबा ने मेरी ओर देखकर जिज्ञासा की--क्या आप **ब्रह्मचारी** हैं।

कुछ हँसकर मैंने उत्तर दिया--नहीं-नहीं, मैं **गृही** हूँ। आपके दर्शनार्थ ही यहाँ आया हूँ।

सुनकर **बाबा** ने पूछा--आपको कोई दुःख है क्या?

मैं बोला--मेरे शरीर को तो कोई दुःख नहीं है। हाँ, **भव-व्याधि** को कहें, तो वह अवश्य है।

बाबा--शरीर में दुःख-शोक आदि कुछ नहीं है, तो फिर हमारे पास क्यों आया रे?

मैं--दुःख न होने से क्या आपके पास न आना चाहिए?

बाबा--कठिन रोग हुए बिना कोई हमारे पास आता नहीं! यही देखो न, मरा छोकरा लाकर कहता है, बचा दो! मैं क्या करूँगा, **तारा माँ** जो करे, वही होगा। मैं क्या डाक्टर हूँ?

मैंने देखा, **बाबा** प्रसन्न भाव में हैं। **बाबा** में मुझे रसिकता की मात्रा भी दिखाई दी। बड़े सरल--कठोरता का नाम नहीं। हाँ, शरीर से कुछ शिथिल भले दिखाई पड़े। उठने-बैठने में सहायता करने के लिए एक जन बराबर उनके समीप रहता था। सब समय कुछ-न-कुछ कथा-वार्ता चलती ही रहती थी।

बीच-बीच में **बाबा** हृदय-भेदी स्वर में अत्यन्त करुण भाव से '**माँ-माँ**' अथवा '**तारा-तारा**' कहकर पुकार उठते थे। लाल-लाल, ज्योति-पूर्ण नेत्र सदा डबडबाए प्रतीत होते। जब मेरी ओर देखते, तो ऐसा लगता--मानो एक बार में ही ग्रास कर जाएँगे। उनको देखने से एक प्रकार का भय उत्पन्न होता था, परन्तु उनकी बातें सुनने से साहस मिलता था।

इसी समय कलकत्तेवाले बाबू गोद में उसी रुग्ण बालक को लिए खुशी-खुशी वहाँ आ पहुँचे। उनके पीछे ही बालक की माता भी थी। दोनों ने पास आकर **बाबा** को प्रणाम किया। **बाबा** ने प्रसन्नता-पूर्वक पूछा--क्यों रे, तेरा छोकरा बच गया न?

उन सज्जन ने पुनः प्रणाम करते हुए भक्ति से गद्‌गद स्वर में कहा--**बाबा**, यह तो आप ही का छोरा है, इसे मेरा क्यों कहते हैं।

बाबा बोले- **माँ** ने ही इसे बचाया है, हमारे लिए तो कुछ भी साध्य नहीं है। जा, घर जा और **तारा माँ** का नाम लेकर उसे पुकार।

"

देश के आर्त्त-जनों के दुःख-निवारण के लिए **वामा-क्षेपा महा-श्मशान की अधिष्ठात्री, जगज्जननी तारा** से प्रार्थना करते ही रहते थे। अंग्रेजों की नौकरी को ही सर्वस्व माननेवाले पढ़े-लिखे लोगों को वे यह कह कर उद्‌बुद्ध करते थे कि--

'विद्या पढ़कर तुम कमाने के लिए रोजगार करते हो। इससे तुम्हारी जड़ शक्ति का ही विकास होता है, चैतन्य-शक्ति का विकास नहीं होता। तुम्हारा शरीर ठीक नहीं रहता। शरीर ठीक न होने से शक्ति नहीं प्राप्त होती।'

"

स्त्री-पुरुष दोनों ने पुनः **बाबा** को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपने बालक को लेकर चले गए। हम लोग यह चमत्कार देख कर दङ्ग रह गए! इन कुछ दिनों में **वामा-क्षेपा** के दरबार का जो सत्सङ्ग मैंने कर पाया था, उससे मैंने अच्छी तरह समझ लिया कि दूसरे साधु-महात्मा जिस प्रकार लोक-सम्पर्क में आने पर दूर ही रहते हैं, उनसे कुछ जानने या समझने के लिए उनके विशेष भाव में आने की जैसी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, वह सब **बाबा** में नहीं है। ये तो सदा ही शिशु जैसा सरल भाव रखते हैं।

ऐसी दशा में **विशेष उपदेश** प्राप्त करने के लिए मैंने **नगेन पण्डा** की सहायता लेने का प्रयत्न किया। मेरे आग्रह करने पर उसने **बाबा** से मेरे सम्बन्ध में कहना स्वीकार कर लिया। उक्त सज्जन पुरुष के चले जाने पर दो-एक लोग और उठ गए, तब प्रायः एकान्त देखकर **नगेन** ने **बाबा** से कहा—**बाबा**, ये आपसे कुछ **उपदेश** पाना चाहते हैं। इसी से यहाँ तक आए हैं।

बाबा बोले—**उपदेश** तो यही है बाबा कि '**काली**' कहो, '**तारा**' कहो। '**माँ**' **का नाम ही सार** है और क्या कर सकोगे, बोलो? हम तो **मद-भाँग** खाते है और **माँ के चरणों** में पड़े रहते हैं—माँ जो भी करे! अन्य कोई कथा-वार्त्ता तो मैं जानता नहीं।

यह कहकर उन्होंने एक ऐसे अपूर्व भाव से '**तारा माँऽऽ!**'—कहा कि मेरे हृदय में न जाने कैसा रोमाञ्च हो उठा। जिस प्रकार छोटा बच्चा माँ को पुकारता है, उसी प्रकार की जीवन्त और व्याकुल अनुभूति उनके उस स्वर से ध्वनित हो रही थी!

इस बीच अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट, श्याम-वर्ण शरीर, अस्त-व्यस्त केश-पाश, बड़े-बड़े नेत्र, उज्ज्वल मस्तक में सिन्दूर का विन्दु, लाल वस्त्र, अवस्था लगभग चालीस वर्ष—इस विवरण के एक व्यक्ति ने वहाँ आकर **बाबा** को प्रणाम किया और बैठ गया। नवागत व्यक्ति को देखकर **बाबा** सजीव-से हो उठे। उससे पूछा—अकेले ही आए हो क्या?

उस व्यक्ति ने कहा—**मजूमदार मशाई** भी आए हैं। दोपहर को आपके पास जाने को कहकर गाँव चले गए। कल सारी रात काम चलता रहा। जाकर देखा, तो उनके हृदय की गति अच्छी नहीं है।

बाबा बोले—तो वह मरेगा। क्रिया-कर्म तो करे नहीं, केवल '**कारण**' पाकर स्फूर्ति लेने से ही क्या **माँ** को दया होती है? होगा! उसकी और बात

"सभी '**शाक्त**' हैं । जो '**शक्ति**' चाहता है, वह उपासना करे या न करे, '**शाक्त**' ही है । मैं तो मानता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य '**शाक्त**' है। जीव की प्रथम प्रवणता है—'**शक्ति-मुखी**'। जो इस बात को अस्वीकार करे, वह महा-मिथ्याचारी है।"

—**बाबा वामा-क्षेपा**

करने की जरूरत नहीं, माँ समझेगी। तू माँ का एक भजन गा। वही ठीक होगा।

यह सुनकर वह व्यक्ति अपने सुरीले गले से राजा रामकृष्ण का यह गान सुनाने लगा–

दीन-तारिणी दुरित-वारिणी,
सत्त्व-रज-तम-त्रिगुण-धारिणी।
सृजन-पालन-निधन-कारिणी,
सगुणा निर्गुणा सर्व-स्वरूपिणी ।।

सुनते-सुनते बाबा की आँखो से आनन्दाश्रु झरने लगे। ऐसा ही मधुर गीत था वह! हम सभी एक विलक्षण भाव से अभिभूत हो उठे। गीत का अन्त इन पंक्तियों से हुआ–

वैशेषिक वेदान्त नाहि पेए अन्त ।
अनन्त तोमाय चिनिते पारेनि ।।

नगेन पण्डा बोले–वह भी सुनाना भाई, '**कब समाधि···?**' और उसने गा सुनाया–

कबे समाधि हबे श्यामा - चरणे ?
अहं-तत्त्व दूरे जाबे विषय-बासना सने ।।
उपेक्षिया महत्-तत्त्व छाँड़ि चतुर्विंश तत्त्व।
सर्व-तत्त्वातीत तत्त्व देखि आपने आपने ।।

गान शेष होने पर गाँजा चला। बाबा ने सबको प्रसाद दिया।

प्रसाद पाकर नगेन पण्डा उठ गए। उनके पीछे-पीछे दो-एक जन और चले गए। अब दो-ही-एक लोग वहाँ रह गए। गाँजे से लालिमा-युक्त नेत्रों से क्षेपा-बाबा बीच-बीच में मुझे देख लेते थे। उनकी वह दृष्टि मुझे कुछ बदलती हुई प्रतीत हुई। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानों अब वह कहीं अधिक स्नेह-सिक्त हो उठी है और मुझे अपने सान्निध्य में बुला रही है। मैंने समझ लिया कि जिस सुयोग की प्रतीक्षा में मैं अब तक आकुल-व्याकुल था, वह आखिर आ ही गया।

अवसर देखकर मैं उठा और अति मन्द गति से चलकर बाबा के समीप पहुँच गया। उस समय उनका ध्यान और कहीं था। मैंने अधिक-से-अधिक भक्ति-पूर्वक उनके पूज्य चरणों में हाथ लगाया। विचार था कि कुछ सेवा कर लूँ, किन्तु मैंने चरण छुए नहीं कि वामा-क्षेपा चमक

> "
> 'तन्त्र-मत' के अनुसार 'साधना-पथ' पर चलने पर–निष्ठा- पूर्वक 'साधना' करने पर, साधक में अद्भुत 'शक्ति' का विकास होता है। उसी समय अनेक साधकों में अभिचार-क्रियाओं के प्रति प्रबल अनुराग उत्पन्न होता है । उनके मन में 'शक्ति' का प्रयोग करने की प्रवृत्ति उठती दिखाई देती है । ये प्रयोग हैं–
>
> १. मारण, २. मोहन, ३. उच्चाटन, ४. वशीकरण, ५. विद्वेषण और ६. स्तम्भन । इन्हें छोड़कर और जो कुछ हैं, वे सब 'भूत-सिद्धि' का फल हैं। कुछ 'जादू-टोना'–जैसे प्रयोग करते हैं। इनसे अत्यन्त स्थूल बुद्धिवाले मनुष्य ही मोहित होते हैं। ऐसे प्रयोगों के करनेवालों की साधना को क्षति अवश्य पहुँचती है, पर उतनी नहीं, जितनी उक्त उग्र कर्म करनेवालों को। 'प्रकृति' के साधारण नियम के ऊपर हाथ चलाने का फल उन्हें भोगना ही पड़ता है।
>
> –बाबा वामा-क्षेपा
> "

उठे। मेरे हाथ को झटका देकर तीव्र स्वर में उन्होंने डपटकर कहा–ओरे शाला! पैर में हाथ क्यों लगाता है।

फिर कुछ नर्म स्वर में बोले–तू बोल ना, क्या कहता है? पैर में हाथ लगाकर मेरे मन को क्यों भुलाता है!

बाबा की हुङ्कार से तो मैं पहले स्तब्ध हो गया था। फिर उनके स्निग्ध स्वर से कुछ सँभल गया। मैं भरे गले से बोला–आप तो मन की बात जानते हैं। आप मुझ पर दया करें।

उन्होंने कहा–तू दो-चार दिन यहाँ ठहर, कुछ ठण्डा हो ले, फिर सब हो जाएगा। मन तो तेरा ठीक है।

मैं बोला–आपने मुझे ठण्डा कर दिया! मन तो मेरा बड़ा चञ्चल है।

तेजी से उन्होंने कहा–मेरे करने से क्या होगा रे! तू मेरी बात क्यों करता है?

फिर कुछ मृदु कण्ठ से बोले–ठण्डा तू यदि होना चाहता है, तो मैं जो कहूँ, उसे सुन। मैं कहता हूँ, घर को जा। ठण्डा होने की और कौन जगह है? तेरे माँ-बाप हैं?

मैं–हाँ **बाबा**, माँ, ठाकुर माँ, दीदी–

'और बताने की जरूरत नहीं–घर जाकर माँ-बाप के चरणों की पूजा कर, सब पाएगा, सब होगा।'

वामा-क्षेपा की यह बात सुनकर मुझे लगा, मानों वे मुझे टरकाना चाहते हैं। बात ही उनकी ऐसी थी। मैंने अपने को सँभालकर संयत स्वर में निवेदन किया–देखिए, आज आपके सम्मुख अपने हृदय की बात रखता हूँ। सदा सत्य बोलना, कभी झूठ न कहना, किसी का कुछ भी कभी मत चुराना, किसी को ठगना नहीं, माता-पिता की सेवा करना, उनकी आज्ञा मानना या उन्हें भगवान् मानकर मन-प्राण से अनुगत होकर उनको सन्तुष्ट रखना इत्यादि उपदेश बचपन से सुनता और पुस्तकों में पढ़ता आ रहा हूँ, परन्तु मन तो उन्हें भगवान् मानकर सेवा करने को तैयार होता नहीं। भगवान् को देखा तो पाता नहीं, परन्तु कल्पना से उनके प्रति एक प्रकार का तीव्र आकर्षण अवश्य अनुभव करता हूँ–परन्तु आँखों के सामने ही बाप-माँ को अपने-ही समान स्वाभाविक भावों में देखकर उन्हें भगवान्-जैसा मैं कभी मान नहीं सकता।

'क्यों रे–?'

"

'तारा-पीठ' का सम्बन्ध **महा-चीनाचार-सिद्ध श्रीवशिष्ठ** से है। यह वङ्गाल की **'वीर-भूमि'** जिलान्तर्गत **उत्तर-वाहिनी द्वारका** नदी के तट पर स्थित है। **'तारा-पीठ'** की अधिष्ठात्री देवी को **वशिष्ठाराध्या** भी कहा जाता है। प्रसिद्ध **महा-कौलिक वामा-क्षेपा** इसी **'पीठ'** के अधीश्वर थे।

"

'बाप माँ को भगवान् के रूप में देखने के लिए उनके प्रति जिस भक्ति भाव की जरूरत है, वह मुझमें है ही नहीं। मैं उनका सत्पुत्र नहीं हो सका– मुझे घर अच्छा नहीं लगता, उनके साथ रहना भी अच्छा नहीं लगता।

'हाँ, देख तो मेरी ओर–जो जैसा है, वैसे ही उसके बाप-माँ होते हैं। तू यदि अच्छा मनुष्य बने, तो वे भी तुझे अच्छे लगेंगे। असल में तू भगवान् को चाहता नहीं, तू इधर-उधर गुलछर्रे उड़ाने के फेर में है–फिर कैसे तुझे बाप-माँ के प्रति भक्ति हो!'

'आप जो बात कहते हैं, वह मुझे अच्छी जरूर लगती हैं, परन्तु उन्हें भगवान् मानना मेरे बूते के बाहर है। इसका मुझे सचमुच बहुत-बहुत दुःख है, पर करूँ क्या?'

कुछ उग्र होकर **क्षेपा बाबा** बोले–तू मन में यह अच्छी तरह जान ले कि बूढ़े माँ-बाप की जो सेवा नहीं करता, वह शाला भगवान् को कभी पा नहीं सकता!

मैंने विनय-पूर्वक कहा–मेरे बाप मेरी सेवा नहीं चाहते। वे तो चाहते हैं कि मैं मनुष्य बनूँ, खुद कमाकर खाऊँ, उनके पास बेकार न बैठूँ, उपार्जन करके उनके हाथ में कुछ दे सकूँ और उनसे कोई आशा न रखूँ–ऐसा होने पर ही वे सुखी होंगे।

'यह तो ठीक है, पर मेरी बात तो तू समझता नहीं। मैं कहता हूँ, तू उनकी सेवा कर, उनको प्रसन्न कर और सब काज सिद्ध होगा।'

'मेरी सेवा तो, वे चाहते नहीं–'

बीच में ही **क्षेपा बाबा** बोल उठे–तू बड़ा बकवादी है रे! वे चाहें या न चाहें, तू अपना कर्तव्य करता जा।

मैंने कुछ दृढ़ता से कहा–देखिए, सच बात कहता हूँ। मुझमें इतनी प्रबल भक्ति नहीं है कि उनके न चाहने पर भी मैं अपने मन को दबाकर उन्हें सन्तुष्ट कर यह जन्म सार्थक करूँ। मेरे मन में तो आता है कि उनसे सदा दूर रहूँ। दूर रहने से मन में जो भक्ति-श्रद्धा रहती है, वह पास में रहकर नाना प्रकार के उनके व्यवहारों को देख कर नहीं रह पाती।

वे–देख, तू जैसा पढ़ा-लिखा है, उसके अनुरूप तेरे ये विचार नहीं हैं। तू घर को चला जा और माँ के चरणों में लिपट कर पड़ रहना– इस समय यही तेरा काम है। पैसा कमाकर लाना, बाप के हाथ में देना और **संसार-धर्म का पालन** करना। यही ठीक है।

श्मशान-पीठ

तन्त्रों में **श्मशान** को साधना का आधार–'**पीठ**' माना गया है। '**श्मशान-पीठ**' नदी का वह तट होता है, जहाँ पर शव-दाह किया जाता है।

'**श्मशान-पीठ**' में साधना करने के लिए **सद्-गुरु द्वारा वीर-साधना की दीक्षा** ग्रहण करनी पड़ती है।

वीर-तन्त्र में कहा गया है कि जो **बलशाली, बुद्धिमान्, साहसी, सरल - चित्त** और **करुणा-पूर्ण** है, वही **वीर-साधना** के लिए उपयुक्त होता है।

योगिनी, भैरवी, वार्ताली, शव तथा **चिता-साधना** को ही तन्त्रों में **वीर-कार्य** कहा गया है।

यह बात कहते हुए जब बाबा वामा-क्षेपा ने अनुभव किया कि उनकी बातें मेरे मन में बैठती नहीं हैं, तब उन्होंने कहा—बचपन में बाबा मुझसे जो कहते थे, वही मैं करता था। वे कहते—'चल, कुछ गा तो, और मैं गाने लगता। वे किसी बात को मना करते, तो मैं उसे महा-पाप समझता। तू भी ऐसा क्यों नहीं करता?

मैंने कहा—आप जैसी सद्-बुद्धि मुझमें यदि होती, तो आज मेरी यह अवस्था ही क्यों होती! मैं अपने को अधिक बुद्धिमान जो लगाता हूँ—बाप में भी अनेक दोष मैं देख लेता हूँ। काम, क्रोध, हिंसा, द्वेष—ये सब रोज-रोज देखकर मन में भक्ति कैसे रहे?

'ओ रे शाला, जान पड़ता है, बाप की मार खूब खाई है, रे! मैंने नहीं खाई, क्या यह समझता है? मैं तो खूब मार खाता हूँ, माँ के हाथ से खाता हूँ, पर उससे क्या? दोष होने पर मार पड़ती ही है।'

'भगवान् में भी क्या ऐसा काम-क्रोध है! वे क्या उस तरह अपनी सन्तान को सताते हैं?

'अरे, तू समझता नहीं! टेढ़ी-तिरछी वस्तु को सीधा करने में उसे पीटना पड़ता ही है। तू भी तो टेढ़ा-बाँका है, इससे मार खाता है। भगवान् जिसको तू कहता है, वही है यह माँ तारा—यह क्या मारती नहीं, बाबा? यह भी समय-समय पर मारती है, जब देखती है कि लड़का बिना मार के सुधरेगा नहीं।'

'आपकी बात से अब कुछ समझ में आ रहा है, परन्तु वह सब मन में तो बैठता नहीं। उनके दोष ही समझ पाता हूँ—'

'मैने यह सब बात कही किसलिए रे! तू समझ तो। समझने की इच्छा तुझमें हो, तो वह तुझे बुझा देगी। तेरा भगवान् कहाँ है? जिससे यह शरीर हुआ है, वही तेरा भगवान् है—वही माँ, जिसने तुझे गर्भ में धारण किया है। इसी से कहता हूँ, जा! घर जाकर देख तो—सब ठीक होगा।'

इतना कहकर वामा-क्षेपा ने ध्यान से मेरी ओर देखा! मुझे प्रतीत हुआ कि उन्होंने यह बात भाँप ली कि मैं उनकी बात को सीधे रूप में ग्रहण नहीं कर रहा हूँ। मैंने फिर आर्त्त स्वर में कहा—घर जाने से सब कैसे ठीक होगा, यह मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। आप खोलकर समझाएँ, तो शायद समझ पाऊँ।

उन्होंने कहा—तू घर जा और बाप-माँ के अनुगत होकर भक्ति-पूर्वक रहे। तब सब समझ जाएगा।

"

महा-साधक श्री निगमानन्द देव ने नाद-सिद्ध श्री वामा-क्षेपा से 'दीक्षा' लाभ कर 'तारा-पीठ' की प्रसिद्ध श्मशान-भूमि में 'त्रिपुर-सुन्दरी महा-विद्या' का दर्शन लाभ किया था।

"

मैं फिर बोल उठा—पर **बाबा**, भक्ति भी क्या जबर्दस्ती हो सकती है? मेरा हृदय जिस बात को चाहता है, उसे न पाकर वह भक्ति-भाव से परिपूर्ण कैसे होगा?

वह—देख, मै मूर्ख मानुष बड़ी-बड़ी बात तो करना जानता नहीं, सीधी बात कहता हूँ। उसे सुन। बता तो, तेरे मन में जो अच्छे-अच्छे भाव, ज्ञान, भक्ति की धारणा उत्पन्न हुई है, उसे क्या करके तूने पाया है?

मै-मेरी समझ से मुझमें जो ये भाव हैं, वे संस्कार से जन्म से ही हैं और भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में अवसर पाकर फूट पड़ते हैं—

बीच में ही टोंक कर **वामा** बोल उठे—ओ रे दुष्ट बातूनी! तेरे भीतर जो गुण हैं—जिनका उल्लेख करते हुए तुझे गर्व का अनुभव होता है, वे सभी तेरे जन्म-दाता के दिए हुए हैं—समझा—

मैं—अच्छा, यदि ऐसा है, तो फिर उनमें मैं इन गुणों को क्यों नहीं देखता?

वह—उनमें ये गुण अवश्य ही हैं। तू समझ नहीं पाता। अच्छा देख, तुझमें भगवान् के प्रति सहज भक्ति है और सन्देह भी, इसी से तो तू ज्ञान की चर्चा खूब करता है और दस जगह भटकता फिरता है। तुझको देखकर स्पष्ट पता चलता है कि तेरे जन्म-दाता में भी भगवान् के प्रति सहज भक्ति है और विचार करते समय सन्देह और अविश्वास भी है। अतएव जो कुछ भी करना चाहते होगे, उसमें खूब घोटा-घाटी करते होंगे। इसी का आभास तेरे मन में वर्तमान भाव-समूह से मिलता है।···अच्छा, जन्म-दाता की बात रहने दे। माँ की बात तो सोच रे! तू माँ की पूजा तो कर सकता है? माँ को प्रसन्न करके तू **जगदम्बा** को पा सकेगा।

मैं—मेरी माँ तो बड़ी धार्मिक और दयालु हैं, किन्तु हमारे घर में जो कुछ अशान्ति है, उसका कारण उन्हीं की सङ्कीर्णता है। यही सब देख-सोच कर मेरी धारणा हुई है कि संसार से सम्बन्ध तोड़े बिना आत्म-कल्याण सम्भव नहीं।

वह—ओ रे! ये सब बातें भुलाकर, किसी ओर भी मन न दौड़ाकर तू माँ को ही **जगज्जननी** मान और उनके चरणों में आत्म-समर्पण कर—तब तुझको कुछ भी असम्भव नहीं रहेगा।

मैं—परन्तु जो नाना तत्त्व मैं जानना चाहता हूँ, वे माँ के पास मैं कैसे पाऊँगा? वे पढ़ी-लिखी हैं नहीं—ज्ञान-विद्या की धारणा तक उनमें नहीं है, फिर—

श्मशान-साधना

श्मशान-साधना में विशेष रूप से **कृष्ण-पक्ष** अथवा **शुक्ल-पक्ष** की **अष्टमी** अथवा **कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी** प्रशस्त है।

'**श्मशान**' में साधक को हास्य त्याग कर **एकाग्र दृष्टि तथा चित्त** से **अनुष्ठान** करना पड़ता है।

सामान्यतया **असंस्कृत** चिता ही ग्रहणीय होती है। तन्त्रों के अनुसार **असंस्कृत चिता** से शीघ्र फल की प्राप्ति होती है।

"

श्मशान अथवा वीर-साधना

श्मशान अंथवा **वीर-साधना** की क्रियाएँ **गुरु-गम्य** हैं। तन्त्रों के अनुसार **श्मशान-साधकों** को साधना-प्रयोग के पूर्व निम्नलिखित देवताओं का आवाहन तथा पूजन करना आवश्यक है–

१. **सद्-गुरुदेव**
२. **श्मशानाधिपति**
३. **भैरव**
४. **काल-भैरव**
५. **महा-काल**
६. **महा-कालिका**
७. **भूत-नाथ**
८. **गण-नाथ**

व्याघ्रादि चर्म का आसन आवृत कर साधक को '**वीर-मुद्रा**' में आसीन होना होता है और उसके उपरान्त १. **रक्षा-कवच** और २. **दीप-प्रस्तुति** करनी पड़ती है। फिर **इष्ट-मन्त्र का जप** करना होता है। जप के अन्त में '**बलि**' सम्पन्न करनी पड़ती है।

"

वह–यदि मन और प्राण से तू माँ को ही इष्ट मानकर चल सकेगा, तो सच जान कि तू जो चाहता है, वह सब तेरे सम्मुख प्रकट हो जाएगा, पर यह तुझसे होगा नहीं। अपनी माँ को इष्ट मानकर रखना–क्या सहज बात है? इसी से इतना कष्ट उठाना पड़ता है। घर में ही भगवान् हैं, पर तू उनको चाहता नहीं। खैर, तू वैसा ही कर, जिसमें तेरा मन लगता हो। हाँ, देख–बाप-माँ में मेल न होने से सन्तान का भी मेल नहीं होता। बाप का स्वभाव एक तरह का, माँ का दूसरी तरह का–इसका फल यह होना ही था।

मैं–यह ठीक कहते हैं। अपने माँ-बाप की बात मैं जानता हूँ। मेरे बाप भयङ्कर रूप से बलवान् हैं, और हैं उद्धत प्रकृतिवाले तथा अनाचारी (भोगी)। इसके विपरीत मेरी माँ निरीह, त्यागी, शान्त-शिष्ट, निरक्षर, शुद्धाचारी, पूजा-तपस्या-परायणा, भीरु स्वभाव–

वह–ठीक है, इसी भाव का मैया ने बेटा भी जन्मा है। हाँ देख, **तारा माँ** ने इस तरह की मैया से उस तरह के पुरुष का मेल कराकर उन दोनों को तैयार किया है! मैं भला उसके खेल को क्या समझूँगा! पता नहीं, किस भाव में–किस रूप में वह मनुष्य को तैयार करती है। किस काम में लगाती है, वह मैं क्या जानूँ!···**माँ-माँ, तारा–**

कहकर **बाबा** अन्तर्मुखी हो उठे। इस समय तक **वामा-क्षेपा** के परिचायक को और मुझे छोड़ कर वहाँ और कोई नहीं रह गया था। मैं कुछ और निकट खिसक गया। **बाबा** बिल्कुल स्थिर और निष्पन्द रहे। दो-क्षण के बाद मेरी ओर देखकर उन्होंने कहा–तेरा भला होगा रे! **माँ** तुझे ठीक मार्ग पर ही ले जाएगी। तू अपने माँ-बाप के हाथ से ही उठेगा। बाप तेरा **बटुक** है न?

मैं–वह तो मै जानता नहीं–पर **मन्त्र-तन्त्र** कुछ उन्होंने लिया नहीं। वे कहा करते हैं कि जिस पर भक्ति होगी, जिसको गुरु मानने की इच्छा होगी, उसे पाकर ही मन्त्र लूँगा। मैं समझता हूँ, उन्हें **मन्त्र-दीक्षा** पर विशेष आस्था नहीं है। विशेष कर **कुल-गुरु** पर उनकी तनिक भी श्रद्धा नहीं है। ठीक यही मेरा भी भाव रहा है।

वह–मद-भाँग खाते हैं?

मैं–हाँ, वह सब यौवन-काल में खूब चलता था। अब अन्य भाव में–

टोंककर **बाबा** ने पूछा–उनका मन किसे इष्ट मानता है, यह तुझे मालूम है?

मैं–यह तो मैं ठीक नहीं जानता, पर उनके मुख से **रामायण**, **महा-भारत** की कथा सुनते समय मैंने **राम**, **कृष्ण** और **शिव**–इन तीन का ही बखान अधिक सुना है। जब जिसका बखान वे करते हैं, तब उसी को मैं उनका इष्ट समझने लगता हूँ। परन्तु अवसर-अवसर पर उन्हें अनाचारी–

फिर बीच में **बाबा** बोल उठे–अरे नासमझ! आचार तू शाला लोगों के लिए है। शाक्त मनुष्य क्यों आचार मानने लगा! हाँ, **गुरु** के बिना **कुण्डलिनी** अवश्य नहीं जाग सकती।

इसी '**कुण्डलिनी**' का व्यापार तो मुझे जानना है। मैं सावधान हो उठा कि मेरे लिए सुयोग आ पहुँचा है। अति-काल हुआ देखकर मैंने साष्टाङ्ग प्रणाम-पूर्वक **वामा-क्षेपा** से अनुमति ली और वहाँ से उठ आया। अपने स्थान पर आकर मैं लेट रहा और '**कुण्डलिनी**' की बात सोचते-सोचते मैं कब निद्रा देवी की गोद में सो गया, पता नहीं।

❖❖❖

दूसरे दिन सुविधा देखकर **क्षेपा बाबा** के दरबार में पहुँच कर मैं बैठ गया। उस समय वहाँ दो-तीन लोग और बैठे थे। इस बार मैं '**कुण्डलिनी-तत्त्व**' का उपदेश सुनने का पहले से ही निश्चय करके आया था। अतएव रह-रह कर मेरा हृदय उस प्रसङ्ग को छेड़ने के लिए आतुर हो रहा था।

इसी समय **बाबा** एकाएक '**माँ-माँ-माँ तारा**' का उच्चारण करते हुए मस्ती से भरी हुई ऐसी आर्त ध्वनि कर उठे कि मेरे अन्तःकरण का कोना-कोना उससे अभिभूत हो गया। किसी प्रकार का सङ्कोच मुझमें न रह गया। धीरे-धीरे मैंने कहना शुरू किया–आपने कल **कुण्डलिनी** के जगाने की बात जो कही थी–

बाबा ने मेरी ओर दृष्टि-पात किया। कुछ देर तक देखते रह कर फिर बोले–वह **माँ**, जो इस **मूलाधार** में घूमती रहती है, उसे क्या जगाना नहीं होगा? वह न जागेगी, तो मुक्ति कौन देगा? कौन मुक्ति पा सकेगा?

मैंने प्रार्थना की–**बाबा**, मेरी एक प्रार्थना है। आप यदि खुल कर स्पष्ट न कहेंगे, तो मैं कैसे आपकी बात समझ सकूँगा?

वह–मैं तुझसे यह सब **गुह्य कथा** क्यों कहता जाऊँ! तूने **दीक्षा** ली है रे? **तन्त्र-मत** में क्या तू साधना करना चाहता है?

मैं–यह सारा **गुह्य-तत्त्व** जानने की मेरी बड़ी ही इच्छा है, किन्तु आप यदि मुझे अपात्र जानकर वह सब मुझे नहीं बताएँगे, तो मैं फिर क्या

तारा-पीठ की महिमा

'**तारा-सुधार्णव**' में '**तारा-पीठ**' **की महिमा** प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि '**तारा-पीठ**' पर **इष्ट-मन्त्र का तीन लाख जप** सर्वार्थ-सिद्धि के लिए पर्याप्त है–

तारापुरमिदं पीठं,
गन्तव्यं यत्नतःसदा।
लक्ष-त्रय-जपाद् देवी,
सर्व-सिद्धि प्रदा भवेत् ।।

करूँगा! आपसे यह सब मैं पा सकूँगा, इसी आशा से इतनी दूर से आया हूँ। यदि आप मुझे समझा देंगे, तो हानि क्या होगी, यह मैं समझ नहीं पाता।

वह–जो **साधन-भजन** करेगा नहीं, केवल गप्पा-बाजी ही करना चाहता है, उससे किसी तथ्य की जितनी भी कथा कही जाएगी, वह व्यर्थ हो जाएगी।···

मैं–तो आपका मतलब यह है कि **कुल-कुण्डलिनी** केवल **तान्त्रिकों** की ही शक्ति है, अन्य धर्म-सम्प्रदायों के जितने साधक हैं, उनमें **कुल-कुण्डलिनी शक्ति** होती ही नहीं और न **तान्त्रिक मत** में साधना किए बिना वह शक्ति जाग्रत् होती है?

वह–देख रे, तू बड़ा चालाक है। बुद्धि की बात खूब करता है! **कुण्डलिनी** तो सभी में है, सबकी ही जाग्रत् हो सकती है, परन्तु साधना करने और समय होने पर ही। बिना **कुण्डलिनी** के जगे कुछ हो नहीं सकता। एक स्थान में स्थिर होकर धीरज-पूर्वक साधना करने से ही वह जाग्रत् होती है और साधना न करने से वह व्यक्ति को धुमाती है।

मैं–यही तो जानने की मेरी इच्छा है। कैसा यह व्यापार है, यही सुनने के लिए आपके निकट आया हूँ। सुनने से उपकार छोड़ अपकार तो होगा नहीं।

वह–तो फिर गाँजा ले आ!

कहकर वे मुस्कुरा उठे। मेरा मन खिल उठा। मैंने कहा–'मेरे पास कुछ पैसे तो जरूर हैं, पर गाँजा नहीं है।' इतना कहकर मैंने चार आने पैसे निकाल कर सेवक के हाथ में रख दिए।

तभी **बाबा** ने कहा–ओ रे, मेरे और पास तो आ।

जिस समय उन्होंने ये शब्द कहे, मैं उनकी ही ओर देख रहा था। उनके चक्षु करुणा से परिपूर्ण हो उठे और उनमें **मानवेतर ज्योति की उज्ज्वलता** परिलक्षित हो रही थी, जो अनन्त रहस्य की आधार-रूप मालूम होती थी। उनका वह रूप देखकर मेरे मन में जाने कैसा-कैसा हो उठा। मेरा साहस और शक्ति न मालूम कहाँ चली गई।

वामा-क्षेपा के पास मैं खिसक गया। तब बड़े स्नेह से उन्होंने मेरी पीठ पर अपना हाथ रखकर कहा–चादर खोल दे रे और कपड़े की गाँठ ढीली कर ले।

"

'अघोरस्तेजो०'

'अघोर'-नामक महेश्वर की आराधना **'तेज-तत्त्व'** की आराधना है। **शाक्त-साधना** के अन्तिम पड़ाव **अघोराचार** में साधक इनके द्वारा **'तेज-तत्त्व'** की आराधना कर **तेज-मय** हो जाते हैं–

सद्यस्तु पृथिवी ज्ञेयो,
वामो ह्यापः प्रकीर्तिताः।
अघोरस्तेजः इत्युक्तं,
वायुस्तत्पुरुषः स्मृतः ।।
(श्रीमत्-कालोत्तर)

'सद्यः क्षितिर्जलं
वामोऽघोरस्तेजो नरो मरुत्···।'
(श्रीपर-शास्त्र)

"

मेरे वैसा करने पर उन्होंने अपना हाथ नीचे सरकाते-सरकाते **मेरु-दण्ड** के निचले भाग पर पहुँचा दिया और तब कहा–देख मैं कहता जाता हूँ और तू देखता जा। तभी तू सब समझ सकेगा।

वामा-क्षेपा के स्पर्श से मेरे शरीर में रोमाञ्च हो उठा, हृदय में एक अनिर्वचनीय भाव आलोड़ित होने लगा और दृष्टि सहज ही अन्तर्मुखी हो गई। मैं स्थिर–निश्चल था।

शिरो-दण्ड के निचले भाग पर जो ग्रन्थि है, उसी अस्थि पर अंगुलि से स्पर्श कर **क्षेपा बाबा** बोल उठे–ओ रे, तेरा तो सब काज हो चुका है! तब शाला! तू मेरे साथ चालाकी करता है?

यह सुनकर एक प्रकार का भय का भाव मेरे मन में आया, फिर मैं आनन्दित हो उठा। मैं बोला– आप कहते क्या हैं? मैं सच कहता हूँ, मैं कुछ नहीं जानता, आप विश्वास करें।

वह–देख, तू जानता हो या न जानता हो, पर इस स्थान पर मैं देख रहा हूँ कि तेरी **पाक (कुण्डली)** खुल गई है। इसी स्थान पर **कुण्डलिनी** साढ़े तीन पाक (कुण्डली) देकर व्याप्त है। यही ग्रन्थि है **माया-ममता** की। **अहङ्कार** का जैसा और जितना भोग तथा स्वार्थ होता है, उसकी पहली गाँठ इसी स्थान पर पड़ती है। यह गाँठ खूब बड़ी और मजबूत है। यह तब खुलती है, जब व्यक्ति अपनी सीमित छोटी-सी दुनियाँ में सुख नहीं पाता और उससे छुटकारा पाने को छटपटाने लगता है, तभी **गुरु** या **सत्पुरुष** का आश्रय मिलने से इसी स्थान की गाँठ खुलती है। खुलने का लक्षण यही देखा गया है कि उस व्यक्ति की **भगवान् में भक्ति** होती है। अपनी छोटी-सी दुनियाँ को छोड़कर **जगदम्बा के विराट् संसार** में प्रवेश पाने के लिए वह व्याकुल हो उठता है और उसकी प्रवृत्ति पागल-जैसी उसी दिशा को मुड़ जाती है। संसार की छोटी-छोटी चीजों में उसे फिर सुख नहीं अनुभव होता। यहाँ तक कि **इन्द्रिय-सुख** भी उसे तुच्छ प्रतीत होने लगता है। ऐसी दशा होने पर समझना चाहिए कि गाँठ खुल गई है और **कुण्डलिनी** सीधी हो रही है। सीधी होते ही उसका मुख ऊपर की ओर को हो जाता है और वह **ऊर्ध्व** की ओर चलने लगती है। **शिरो-दण्ड** के सबसे नीचे इसी भाग में–जिसका नाम **मूलाधार-चक्र** है–उक्त गाँठ होती है। इस गाँठ के खुलते ही **कुण्डलिनी** ऊर्ध्व-मुखी होकर ऊपर को गति-शील हो उठती है। **माँ, माँ तारा–**

"

'अघोरेश'

'तन्त्रों' के अनुसार- **१. शिव, २. शक्ति, ३. सदाशिव, ४. ईश्वर** और **५. शुद्ध विद्या**– ये पाँच शुद्ध तत्त्व **शुद्ध अध्वा** के कर्त्ता हैं। **अशुद्ध अध्वा** में कर्त्ता **अघोरेश महेश्वर** हैं।

अघोरेश ही **अशुद्ध अध्वा**-रूप सितेतर सृष्टि का प्रवर्त्तन करते हैं।

शाक्त-साधना के अन्तिम पड़ाव **अघोर-साधना** में साधक **महेश्वर अघोरेश** का सतत ध्यान करते हुए बन्धनों में बाँधनेवाले अपने समस्त पाशों को जलाकर भस्म कर डालते हैं।

"

इतना कहते-कहते **बाबा** समाधिस्थ हो गए। कुछ ही क्षणों बाद वे चैतन्य-सा हुए और अर्द्ध-निमीलित नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए पुनः बोले—ओ रे, यहाँ तू क्यों बैठा है? तेरा काम तो बहुत-कुछ हो चुका है। बाकी जो है, वह घर पर ही हो सकेगा। **बाप-माँ** के पास जा, **शादी-ब्याह** रचा। **माँ तारा** की कृपा से तुझे सब कुछ प्राप्त होगा। जा···**माँ**···**माँ तारा**।···

बाबा पुनः समाधिस्थ हो उठे। मैं उनके **श्री-चरणों की धूलि** माथे पर लगा, उठ खड़ा हुआ। मैंने अनुभव किया कि मेरा मन अब अपने **माँ-बाप** की ओर, पता नहीं क्यों, बड़ी तीव्रता से आकृष्ट हो रहा था। मैं उसी आकर्षण के पीछे चल पड़ा।

❖❖❖

"

'कौल-चूड़ामणि' व्रज-वासी **'कैलासपति'** ने **'वामाख्या'** को **वेध-दीक्षा** दी थी। कुछ दिनों के बाद जब गुरुदेव को शिष्य का वास्तविक रूप ज्ञात हुआ, तब उन्होंने उनके लिए वहाँ का **'वशिष्ठासन'** छोड़ दिया और अन्यत्र चले गए। इस प्रकार **'वामाख्या'** की साधना की शक्ति क्रमशः प्रकाशित होती गई। उनके चमत्कारों से प्रभावित होकर लोग उन्हें **'क्रिया-सिद्ध'**, **'वशिष्ठ देव'**, **'तारा-पीठ'** के **भैरव** आदि नामों से पुकारने तथा उनका गुण-गान करने लगे।

"

'वामाख्या जी' ४० वर्षों तक **'तारा-पीठ'** में रहे और नित्य हजारों श्रद्धालु उनके दर्शनों के लिए देश-विदेश से वहाँ पहुँचते रहे। उनके पास से कभी कोई निराश नहीं लौटता था। उनके आशीर्वाद से कितने ही **असाध्य रोगी** एकदम भले-चङ्गे हो गए। **सन्तान-हीनों** ने पुत्र लाभ कर अपने को धन्य माना। **तत्त्व-जिज्ञासु** लोगों ने उनकी शरण पाकर अपना उद्धार कर लिया। उन्होंने कभी यह आत्माभिमान नहीं किया कि उनमें अपूर्व शक्ति है।

महा-सिद्ध अघोरी

श्री वामा-क्षेपा का अद्‌भुत चरित

(सं० १८९१–सं० १९६८ विक्रमी)

दश महा-विद्याओं में से द्वितीय महा-विद्या जगदम्बा **श्री तारा माँ** के कृपा-पात्र **महा-सिद्ध श्री वामा-क्षेपा** का जीवन-चरित अलौकिकता से प्रारम्भ से अन्त तक उद्‌भासित रहा। **वङ्ग-प्रदेश** के '**वीर-भूमि**' जनपद में आज भी '**श्रीतारा-पीठ**' विख्यात ही नहीं है, वहाँ पहुँचनेवाले भक्त-जन आध्यात्मिक उद्‌बोधन पाकर अपने को कृतार्थ भी करते हैं।

'**श्रीतारा-पीठ**' तारापुर नामक स्थान में अवस्थित है, जिसके निकट ही '**अटला**' नामक एक छोटा-सा ग्राम है। उसी ग्राम के निवासी **श्री सर्वानन्द चट्टोपाध्याय** के दो पुत्रों–१. **श्री वामाचरण**, २. **श्री रामचन्द्र** में से प्रथम पुत्र ही **श्री** '**वामा-क्षेपा**' नाम से यशस्वी हुए।

बचपन में **श्री वामाचरण** पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगाते थे, **देवी-देवताओं की मिट्टी की मूर्तियाँ** बनाकर उनसे खेलने में दत्त-चित्त रहते थे। जब जिस देवता का त्योहार आता, तब उसी देवता की प्रतिमा बनाकर अपने साथियों के साथ धूप, दीप, नैवेद्यादि से उसकी पूजा किया करते। यह देखकर उनके धर्म-निष्ठ पिता बड़े प्रसन्न होते और उन्हें शाबाशी दिया करते, किन्तु दैव-योग से अचानक पिता दिवङ्गत हो गए और गृहस्थी का भार अबोध अनपढ़ **बालक वामाचरण** के सिर पर आ पड़ा।

वामाचरण–'शक्ति' के अनन्य भक्त थे। जब उनकी माँ ने कहा कि "यदि तुम कमाओगे नहीं, तो घर के इतने लोग क्या खाकर जीवित रहेंगे और क्या पहनेंगे, ओढ़ेंगे?" तो बालक ने तत्काल यह उत्तर दिया कि "**माँ! अन्नपूर्णा** के रहते हुए, क्या कोई बिना अन्न के मर सकता है? जिन्होंने जन्म दिया है, वे ही खाना भी देंगी। उन्हीं माँ को पुकारो। वही अन्न और कपड़े देंगी।"

वामाचरण प्रति-दिन **श्रीतारा देवी** के दर्शन करने जाते थे और उन्हीं का '**नाम**' जपा करते थे। जब कभी व्याकुल होते, सीधे **माँ तारा** के पास दौड़े जाते और हाथ जोड़कर उनसे कहते–"**माँ तारे!** तुम तो सबका दुःख दूर करती हो, क्या हमारा कष्ट नहीं हरोगी?"

"

'**तारा-पीठ**' की प्रथा है कि **वामा-क्षेपा** के आगे भोग-पदार्थ रखने के बाद ही **माई** के आगे भोग-पदार्थ रखे जाते हैं। उचित भी है, सन्तान को पहले खिला-पिलाकर माँ खुद खाती है। इसी प्रथा के अनुसार सिर्फ एक '**कारण-पात्र**' को **वामा-क्षेपा** के मुख में समर्पित कर **माई की मूर्ति** के सामने भक्त-जन जाते हैं।

"

"

'तारा-पीठ' में माई की मूर्ति चाँदी के आवरणों से आच्छादित रहती है। केवल स्नान के समय सारे आवरण हटाए जाते हैं। सम्पूर्ण मूर्ति में **अक्षोभ्य भगवान्** सर्पाकार होकर लिपटे हुए हैं। **शिशु-रूप में भगवान् शङ्कर माई की गोद में वक्षः-स्थल से क्षीर-पान करते** दिखाई देते हैं।

वहाँ यथा-शक्ति पत्र-पुष्प से अर्चन कर भक्त लोग **चरणामृत का पान** करते हैं। **चरणामृत का स्वाद** सुगति-प्रदाता '**कारण**'-मय होता है। प्रार्थना में-'**खर्वे! गर्व-समूह-पूरित तनुः**'से'**भीमे! भयं नाशय**'तक का पाठ अत्यन्त आनन्द-वर्धक होता है।

श्मशान - द्वार के पास '**वामा-मिशन**' में **वामा-क्षेपा** की एक भव्य प्रतिमा देखने को मिलती है। उनके आगे पत्र-पुष्पों से भरा चाँदी का वृहत् थाल रहता है और पास में ही **घृत-दीप** जलता रहता है।

"

बस, चमत्कार ही हो जाता! **माँ तारा** के पास से लौट कर जब तक **वामाचरण** घर वापस आते, किसी-न-किसी प्रकार परिवार के सम्मुख आई समस्या का निवारण हो जाता। इसी प्रकार दो वर्ष बीत गए। **वामाचरण** केवल '**माँ तारा, माँ तारा**' मन्त्र जपा करते और **माँ तारा** के दर्शन किया करते। घर-गृहस्थी की उन्हें कोई चिन्ता ही नहीं थी।

एक दिन उनकी माँ ने कहा-"**वामा**! अब तुम विवाह के योग्य हो गए हो। पूजा-प्रार्थना का पागलपन छोड़ो, काम-धाम खोजो, कब तक ऐसे रहोगे?"

माता की इस बात से **वामाचरण** ने निश्चय किया कि वे अब कुछ 'काम' करेंगे। माँ ने चाहा कि वे खेती-बारी करें, किन्तु उन्हें पूजा-पाठ के सिवा अन्य कामों का न तो ज्ञान था, न उसमें रुचि ही थी। फलतः १५ वर्ष की आयु में उन्होंने एक मन्दिर में नौकरी स्वीकार की। वहाँ उन्हें पूजा के लिए फूल एकत्र करने का काम मिला, किन्तु कुछ ही दिनों में उन्हें लगा कि उस मन्दिर के पुजारी में वास्तविक श्रद्धा-भक्ति नहीं है। अतः खिन्न होकर वह नौकरी छोड़ दी। अशिक्षित होने के कारण उन्हें कहीं कोई दूसरी नौकरी नहीं मिली। इधर-उधर भटक कर घर लौट आए। उनकी यह दशा देखकर लोग उन्हें '**क्षेपा**' (पागल) कहने लगे और उनका नाम ही '**वामा-क्षेपा**' पड़ गया।

तारापुर में उन दिनों **श्री मोक्षदानन्द प्रधान** '**कौलिक**' (**माँ तारा के पुजारी**) थे। **वामा-क्षेपा** नित्य **माँ तारा** के दर्शनार्थ आते ही थे, उनकी भाव-पूर्ण प्रार्थनाओं से **मोक्षदानन्द जी** बड़े प्रभावित हुए। उनकी कृपा से **तारापुर** के लोग भी **वामा-क्षेपा** को मानने लगे थे। फलतः **मोक्षदानन्द** जी के दिवङ्गत होते ही **वामा-क्षेपा** को ही **तारापुर** के '**कौलिक**'-पद पर नियुक्त कर दिया गया। अब वे निश्चिन्त होकर अहर्निश **माँ तारा की उपासना** में तन्मय रहने लगे।

अचानक **वामा-क्षेपा** की माँ का स्वर्ग-वास हो गया। '**तारापुर**'-**द्वारका नदी** के उस पार था, जहाँ **श्री तारा-मन्दिर** में **वामा-क्षेपा** रहा करते थे। उन्हें माँ की मृत्यु का पता तब चला, जब **द्वारका नदी** के इस पार हरि-कीर्तन करते हुए लोग उनका शव ले आए। **वामा-क्षेपा** अपनी **माँ के अन्तिम दर्शन** के लिए व्याकुल हो उठे, किन्तु उस समय बड़ा तेज तूफान चल रहा था, नदी की ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं। **वामा-क्षेपा**

माँ तारा का नाम लेकर उस उफनती नदी में कूद पड़े। लोगों ने समझा कि वे अब गए, किन्तु **वामा-क्षेपा** सकुशल इस पार आ गए। आते ही उन्होंने अपनी माँ का शव अपनी पीठ पर उठा लिया और उसके सहित पुनः नदी में कूद पड़े। लोग अवाक् खड़े रह गए! सबने सोचा कि माता-पुत्र की अब जल-समाधि होकर रहेगी, किन्तु **माँ तारा** के लाड़ले **वामा-क्षेपा** उस पार पहुँच गए। '**तारा-पीठ**' के **महा-श्मशान** में उन्होंने **माता की चिता** सजाकर आग लगा दी और जलती चिता के सामने **वामा-क्षेपा** नाचने लगे। भक्तों की भीड़ जय-जयकार कर उन्मत्त हो उठी।

माता के वार्षिक श्राद्ध के तीन दिन पूर्व **वामा-क्षेपा** घर पहुँचे और अपने छोटे भाई **श्री रामचन्द्र** से कहा कि "आस-पास के गाँवों के सभी ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे आओ। देखना, एक भी ब्राह्मण छूटने न पाए।" उन्हें पागल समझकर किसी ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। ठीक भी था, घर में तो खाने का ठिकाना नहीं और निमन्त्रण दिया जाए सैकड़ों लोगों को! तथापि **वामा-क्षेपा** स्वयं ही चारों ओर घूम-घूम कर एक-एक ब्राह्मण को न्योता दे आए।

श्राद्ध के दिन सबेरे-सबेरे न मालूम कहाँ से सामान आने लगा। सारा घर आटा, घी, सब्जी आदि से भर गया। सभी दङ्ग हो गए। सैकड़ों निमन्त्रितों के लिए भोजन बन कर तैयार हो गया। जब ब्राह्मणों के भोजन का समय आया, तो अचानक काले-काले मेघ घिर आए। सभी घबरा उठे कि कहीं मूसलाधार वर्षा हुई, तो सारा आयोजन चौपट हो जाएगा। **वामा-क्षेपा** ने आकाश की ओर देखा और बड़े आर्द्र स्वर में बोल उठे- "**माँ**! क्या इतने ब्राह्मण भूखे ही रह जाएँगे? तुम तो **माँ**! मेरी बात कभी नहीं टालतीं।" उनका इतना कहना था कि हवा का एक तेज बवण्डर आया और देखते-ही-देखते सारे मेघ लापता हो गए। '**वामा-क्षेपा**' और '**माँ तारा**' की जय-जयकार से वातावरण गूँज उठा। बड़े आनन्द से ब्राह्मणों ने भोजन किया और **वामा-क्षेपा** की **माता का श्राद्ध** सानन्द सम्पन्न हो गया।

तारापुर में निवास करते हुए **वामा-क्षेपा** की कीर्ति चारों ओर फैल गई। पढ़े-लिखे न होने पर भी मानों सारे शास्त्र उन्हें कण्ठस्थ थे। लोगों के मन की बातें, दूर देश की बातें, भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालों की बातें वे सहज ही जान जाते थे। उनके कितने ही चमत्कार लोगों ने देखे,

"

'**तारा-पीठ**' के **श्मशान** में भिन्न-भिन्न **साधकों के समाधि-मन्दिर** देखने को मिलते हैं। **पञ्च-मुण्डी आसन, सहस्र-मुण्डी आसन, वशिष्ठ का योगासन** आदि के दर्शन कर लोग **श्मशान-भैरव** के दर्शन करते हैं। '**भैरव-मन्दिर**' अल्प-काय है। मठ में लिङ्गाकार **भैरव की छोटी-सी प्रतिमा** है। वहीं बैठकर भक्त दर्शक '**भैरव-सहस्र-नाम**' या '**शत-नाम**' आदि का पाठ करते हैं। पाठ के समय **भैरव-वाहन** कुक्कुर के अचानक दर्शन पाकर भावुक भक्तों को अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति होती है। **श्मशान** का दृश्य परम शान्ति-मय है।

"

♦ जीव की दुर्गति नाश करती हैं–अत: '**दुर्गा**' कहते हैं।

♦ काल के भय को दूर कर जीव की रक्षा करती हैं–वही '**काली**' हैं।

♦ त्रि-ताप का नाश करती हैं–अत: '**तारा**' कहते हैं।

♦ विश्व-भुवन की जो ईश्वरी हैं, वही '**भुवनेश्वरी**' हैं।

♦ षोडश-कलात्मक "श्री" प्रदान करती हैं, अत: '**षोडशी**' कहते हैं।

♦ कान्ति और शान्ति देती हैं, वही '**कमला**' हैं।

♦ मद का जो नाश करती हैं, वही हैं '**मातङ्गी**'।

♦ विश्व को अपने वश में रखती हैं, वही '**बगला**' हैं।

♦ मोह का नाश करती हैं, अत: '**धूमावती**' कहते हैं।

♦ माया छिन्न कर जीव को मुक्त करती हैं, वही हैं '**छिन्न-मस्ता**'।

♦ भव का जो कारण हैं, वही हैं '**भैरवी**'।

जो आज भी प्रसिद्ध हैं। अपने सिद्धि-बल से **वामा-क्षेपा** सर्व-साधारण लोगों का सदैव कल्याण ही किया करते थे।

एक बार किसी व्यक्ति को एक सिद्ध महात्मा ने बताया कि 'सातवें दिन साँप के काटने से तुम मर जाओगे।' सातवें दिन वह **वामा-क्षेपा** की शरण में आया। **वामा-क्षेपा** ने भूमि पर एक गोलाकार रेखा खींची और उससे कहा कि 'तुम इसी के भीतर पड़े रहो और **माँ तारा** को पुकारते रहो!' अर्द्ध-रात्रि के समय अचानक एक साँप वहाँ पहुँचा। उसने उस व्यक्ति को डस लिया और वह मर गया। यह देखकर **वामा-क्षेपा** ने **माँ तारा** के सामने गिरकर प्रार्थना की और वह व्यक्ति पुन: जीवित हो उठा।

एक बार एक निराश रोगी आया। चिकित्सकों ने उसे जवाब दे दिया था। उसके जीने की कोई सम्भावना न थी। वह **वामा-क्षेपा** के चरणों पर गिर पड़ा। उन्होंने उसे उठाया और उसकी पीठ पर तीन घूँसे मार कर कहा–"जा बेटा, तू दूर हो!" बस, उसी क्षण उसका असाध्य रोग जाता रहा।

कितने ही असाध्य रोगियों को मात्र राख मलकर ही **वामा-क्षेपा** ने अच्छा कर दिया। प्राय: ७७ वर्ष की आयु तक इसी प्रकार वे लोगों का उद्धार करते रहे। कभी किसी से कुछ लिया नहीं। कितनों ने ही उन्हें धन-धान्य देने का प्रयत्न किया, किन्तु कभी स्वीकार नहीं किया।

माँ तारा के लाड़ले **वामा-क्षेपा** का अद्‌भुत चरित विलक्षण लीला के साथ ही समाप्त भी हुआ। **संवत् १९६८ के श्रावण मास की द्वितीया तिथि में महा-प्रयाण** के दिन उन्होंने **श्री तारा मन्दिर** के उपस्थित व्यक्तियों को बुलाकर कहा कि "तुम लोग मुझे **श्मशान-घाट** ले चलोगे?" किसी ने ध्यान नहीं दिया। तब वे आसन लगाकर बैठ गए और **माँ तारा** के ध्यान में मग्न हो गए। दूसरे दिन लोगों ने देखा कि वे वैसे ही **योगासन** में बैठे हैं, किन्तु शरीर में प्राण नहीं है। लोग स्तम्भित रह गए और किसी तरह अपने को सँभाल कर उन्हें उसी मुद्रा में उठाकर **श्मशान-घाट** पर पहुँचाया और '**समाधि**' की उचित व्यवस्था की गई। आज उसी '**समाधि**' पर **वामा-क्षेपा का 'स्मृति-मन्दिर'** बना हुआ है।

❖❖❖

तन्त्र-साधना का एक महत्त्व-पूर्ण पीठ

तारा-पीठ

बिहार के '**दुमका**' जिले से लगे **पश्चिम बङ्गाल** के '**वीर-भूमि**' जिले में स्थित '**तारा-पीठ**' काम-रूप **कामाख्या** के बाद **तन्त्र-विद्या** का दूसरा सबसे बड़ा केन्द्र माना जाता है। इसे '**शव-साधकों**' का स्वर्ग भी कहा जाता है। '**माँ-तारा-मन्दिर**' का वातावरण भारत के अन्य प्रसिद्ध व प्राचीन मन्दिरों-जैसा ही है। **मन्दिर** की सीढ़ियाँ चढ़ते ही पहले फूल-मालावाले यात्रियों की खींचा-तानी करते हैं। **माँ का मन्दिर** काफी भव्य है और मूर्ति आकर्षक। धातु-मूर्ति के अतिरिक्त वहाँ '**माँ तारा**' की एक प्राचीन अनगढ़ पाषाण-मूर्ति भी है। '**तारा-पीठ**' में होटलों और धर्म-शालाओं की अच्छी व्यवस्था है। अत: ठहरने के लिए कमरे आदि सरलता से मिल जाते हैं। '**द्वारका नदी**' के किनारे वृक्षों से भरे **महा-श्मशान** को देखकर लोग चकित रह जाते हैं क्योंकि वहाँ चिता जलाने के लिए केवल एक ही स्थान है, जब कि पूरा '**महा-श्मशान**' कच्ची समाधियों और तान्त्रिकों की कुटियों से भरा हुआ है।

'**महा-श्मशान**' में कुटिया बनाकर रहनेवाले साधुओं के पास **नर-मुण्डों** व **अस्थियों** की भरमार रहती है। वे अपनी कुटिया में उन्हें बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से सजा कर रखते हैं। वहाँ तो एक समय एक कुटिया ऐसी थी, जिसमें एक हजार एक सौ आठ **नर-मुण्ड** जड़े हुए थे। अच्छे-अच्छी **तान्त्रिक** उसमें प्रवेश करने का साहस नहीं कर पाते थे। '**तारा-पीठ महा-श्मशान**' में साधना के लिए अनेक स्थल बने हुए हैं, जिसमें '**वशिष्ठ आश्रम**', प्राचीन '**तारा-मन्दिर**' और '**महा-साधक वामा-क्षेपा-मन्दिर**' तो एक ही चबूतरे पर बने हुए हैं।

प्राचीन '**तारा-मन्दिर**' में अब केवल **माँ तारा के चरण** ही रह गए हैं। १३९९ में आधुनिक बँगला देश के **जय सौदागर** ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था। उन्हें एक **श्वेत शेमल वृक्ष** के नीचे **माँ तारा की प्रतिमा** मिली थी, लेकिन प्रति वर्ष बाढ़ के दिनों में **द्वारका नदी** मन्दिर को क्षति-ग्रस्त कर देती थी। १८१९ ई. में नटवर राज्य के **राजा जगन्नाथ राय** ने **श्मशान** के ऊपरी भाग में **दूसरे मन्दिर का निर्माण** कराया। **महा-श्मशान** में एक स्थान पर सिन्दूर से रँगा एक रक्त-वर्णी अनगढ़

"

भक्ति-रस की सम्पुष्टि के लिए जिन विभावों, अनुभावों और सञ्चारी भावों के सम्मिश्रण की आवश्यकता होती है, उनकी उपलब्धि **सिद्ध पीठों** के दर्शन, तत्तद-भक्तों के जीवन-चरितों के पठन और वहाँ के वायु-मण्डल के सेवन से होती है।

सती देवी के तीनों नेत्रों से तीन मणि-विन्दु त्रिकोणाकार में तीन स्थानों पर ३२ योजन के अन्तर से गिरे थे, जिनमें पहला मणि-विन्दु बिहार-प्रदेश के '**सहरसा**' जिले में (मिथिला में), दूसरा मणि-विन्दु पश्चिम बङ्गाल के '**वगुड़ा**' जिले में '**करतोया**' **नदी** के पश्चिम और तीसरा-मणि-विन्दु बङ्गाल के ही '**वीर-भूमि**' जिलान्तर्गत '**दारुका**' **नदी** के तट पर महा-श्मशान में गिरा। प्रथम स्थान की तारा '**नील-सरस्वती**' के नाम से, द्वितीय स्थान की तारा '**भवानी तारा**' नाम से एवं तृतीय स्थान की तारा '**उग्र-तारा**' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

"

"

पुराणों और तन्त्रों में जिन-जिन शक्ति-पीठों एवं उप-द्वीपों की चर्चा आई है, उनमें 'तारा-पीठ' की गणना नहीं है, परन्तु बहु-संख्यक कौल-बन्धु इसे 'महा-सिद्ध पीठ' ही मानते हैं। तारा माई के भक्तों में जहाँ प्राचीन काल के वशिष्ठ, परशुराम, दत्तात्रेय आदि महात्माओं के नाम आते ही हैं, वहीं अर्वाचीन काल में नाद-सिद्ध प्रकाण्ड कौल 'अघोर'-साधक श्री वामा-क्षेपा आदि महात्मा तारा विद्या के सिद्ध महा-पुरुषों में स्मरण किए जाते हैं।

"

पाषाण है, जिसे महर्षि वशिष्ठ द्वारा स्थापित 'पञ्च-मुण्डी आसन' बताया जाता है। ऐसी मान्यता है कि महर्षि वशिष्ठ ने इस स्थल पर 'पञ्च-मुण्डी आसन' पर साधना की थी। इसे आज भी सिद्ध स्थल माना जाता है। कहते हैं कि महर्षि वशिष्ठ को काम-रूप की कामाख्या देवी ने द्वारका नदी के किनारे श्वेत शेमल वृक्ष के नीचे साधना करने का आदेश दिया था। उसी आदेश के अनुसार वे तारा-पीठ आए। शेमल वृक्ष के नीचे से माँ तारा की प्राचीन मूर्ति उन्हीं ने निकाली थी।

एक अन्य कथा के अनुसार समुद्र-मन्थन के बाद जब भगवान् शिव विष-पान करने के कारण मृत-प्राय हो गए, तो भगवती ने माँ का रूप धारण कर अपने स्तनों से उन्हें दूध पिला कर स्वस्थ किया था। कथा के अनुसार इस स्थान में सती की आँख गिरी थी।

'तारा-पीठ' के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक कथा यह प्रसिद्ध है कि सन् १३९८ में जय सौदागर नामक एक व्यापारी वर्षा ऋतु में 'द्वारका नदी' से होते हुए 'वीर-भूमि' जा रहा था। आँधी-पानी के कारण उसे इस स्थल पर रुकना पड़ा। नाव से उतरते समय उसके पुत्र धनञ्जय को एक नाग ने डँस लिया। जय सौदागर ने उसके शव को सुगन्धित तैलों का लेप लगाकर सुरक्षित रख लिया। घटना के दूसरे दिन उसकी टोली के तीन नाविक एक मछली के सात टुकड़े कर श्मशान के किनारे के कुण्ड में धोने गए, तो सभी कटे टुकड़े जुड़ गए और मछली जीवित हो गई! इस चमत्कार की सूचना पाकर जय सौदागर ने सोचा कि यदि मृत मछली जीवित हो सकती है, तो उसका पुत्र भी जीवित हो सकता है। उसने पुत्र के शव को उसी कुण्ड में डाल दिया। उस समय घोर वर्षा हो रही थी। मौसम इतना भयावह हो गया कि साथ आए सभी नाविक डर कर भाग गए, लेकिन पुत्र-मोह में जय सौदागर वहीं डटा रहा। रात में माँ तारा ने उसे स्वप्न में बताया कि "यह महर्षि वशिष्ठ का सिद्ध स्थान है। उसका पुत्र जीवित हो जाएगा।" हुआ भी वही, सुबह होते-होते उसका पुत्र जीवित हो उठा! फलतः जय सौदागर 'तारा-पीठ' का ही होकर रह गया। उसने अपना व्यापार पुत्र को सौंप दिया और स्वयं संन्यासी बन गया। स्वप्न में आदेश मिलने पर उसने श्वेत शेमल के वृक्ष के नीचे से 'माँ तारा' की पाषाण-मूर्ति निकलवाई और वहाँ मन्दिर बनवाया।

आज भी मूर्ति-स्थापना की स्मृति में प्रति वर्ष आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को विशेष पूजा होती है। मेला लगता है, जो एक मास तक चलता

है। '**तारा-पीठ**' के जमीन्दारों और राजघरानों के लोगों ने इस स्थल के जीर्णोद्धार और विकास में बड़ी रुचि ली। **राजा नटवर** के पुत्र **श्री रामकृष्ण** ने '**चण्डीपुर**' नामक पूरा मौजा '**तारा-पीठ**' के नाम दान कर दिया था।

'**तारा-पीठ**' के साधकों की एक लम्बी सूची है, किन्तु सबसे बड़े साधक के रूप में '**श्रीवामा-क्षेपा**' का ही नाम प्रख्यात है। उन्हें '**श्रीरामकृष्ण परमहंस देव**' के समकक्ष माना जाता है। '**श्रीवामा-क्षेपा**' का जन्म '**तारा-पीठ**' से तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित '**आटला**' **गाँव** में १८३३ ई. (शक संवत् १२४०) में हुआ था। उन्होंने **महर्षि वशिष्ठ** के '**पञ्च-मुण्डी-स्थल**' में बैठकर साधना की थी। कहते हैं कि वे **माँ तारा** की पाषाण प्रतिमा के स्तनों से दूध पिया करते थे। अनेक चामत्कारिक कथाएँ उनके सम्बन्ध में प्रचलित हैं। उन्हीं के प्रिय शिष्य थे-'**श्री बाबा शङ्कर-क्षेपा**'। उनका नाम आज भी '**तारा-पीठ**' के कोने-कोने में व्याप्त है।

'**तारा-पीठ**' में **साम्प्रदायिक सौहार्द्र** का अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता है। **माँ तारा** के मन्दिर में सभी धर्मों के लोगों की आस्था है। वे बे-रोक-टोक **माँ के मन्दिर** में जाते और **माँ का दर्शन** लाभ करते हैं। यहाँ के **महा-श्मशान** में कई **ईसाई कब्रें** हैं। **मुस्लिम शव** भी श्रद्धा-पूर्वक दफनाए जाते हैं और **हिन्दू-शव** भी। '**तारा-पीठ**' के **मुसलमान** उर्दू नहीं जानते। वे बँगला बोलते हैं और बँगला में ही **माँ तारा के भजन** गाते हैं। **माँ तारा** के प्रति आस्था का आभास उनके नामों से भी होता है। वे बच्चों के नाम **माँ तारा** के नाम पर ही रखते हैं। जैसे-**ताराउद्दीन, तारूशाह** आदि।

'**तारा-पीठ**' से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर '**द्वारका नदी**' के किनारे एक बड़ा ही शान्त और रमणीक आश्रम है-'**मुण्ड-मालिनी-आश्रम**'। प्रसिद्ध साधक **छोटा बाबा** द्वारा स्थापित इस आश्रम में **माँ तारा** का एक मन्दिर भी है।

शक्ति साधकों के लिए '**तारा-पीठ**' वास्तव में परम सिद्धि-दायक साधना-स्थल है। देश के साधकों को चाहिए कि इस '**सिद्ध-पीठ**' के दर्शन कर यहाँ की माटी को मस्तक में लगा कर शक्ति-लाभ करें। **जय माँ तारा··· जय गुरु वामा ··· जय गुरु शङ्कर।**

❖❖❖

“

पूर्वी रेलवे के '**रामपुर हाल्ट**' स्टेशन पर उतर कर छोटी मोटर गाड़ी से '**तारा-पीठ**' पहुँच सकते हैं। मार्ग की दूरी लगभग चार मील है। '**रामपुर हाल्ट**' से पक्की सड़क '**तारा-पीठ**' तक गई हुई है।

दारुका (द्वारका) नदी को पार करते ही सर्व-प्रथम **वामा-क्षेपा का समाधि-मन्दिर** दिखाई देता है, जो लाल रङ्ग से रङ्गीन है। आगे बढ़ते ही माई के विशाल प्राङ्गण और मन्दिर के दर्शन होते हैं। मन्दिर के आमने-सामने ही **अमृत-कुण्ड** (तालाब) वर्तमान है। माई के आँगन में भिन्न-भिन्न मन्दिरों के अतिरिक्त एक मठ में **वामा-क्षेपा** की शिला-मयी मूर्ति श्वेत पत्थर की है। **वामा-क्षेपा** अपनी स्वाभाविक मुद्रा में बैठे हुए हैं। उनके पास उनका प्रिय कुक्कुर, जिसे वे '**कालू**' या '**हरि**' कहकर पुकारते थे, बैठा है। मूर्ति इतनी चित्ताकर्षक है कि वहाँ से हटने की इच्छा ही नहीं होती।

”

'वीराचार' की साधना-स्थली 'वीर-भूमि'

वङ्गाल के '**वीर-भूमि**' जन-पद के विविध स्थानों में '**भगवती सती**' के देह के खण्डित अङ्गों के गिरने से अनेक सिद्ध '**शक्ति-पीठ**' प्रतिष्ठित हो गए हैं। '**नन्दिपुर**' ग्राम में **गले का हार** गिरा था, अत: वहाँ देवी '**नन्दिनी**' विद्यमान हैं और उनके भैरव हैं–'**नन्दिकेश्वर**'। '**लाभपुर अट्टहास**' में **अधरोष्ठ** गिरा था, जिससे वहाँ देवी '**फुल्लरा**' की प्रतिष्ठा है और उनके भैरव हैं–'**विश्वेश**'। '**दुबराजपुर**' स्टेशन से सात मील उत्तर की ओर **दोनों भौंहें** गिरी थीं, अत: वहाँ '**महिष-मर्दिनी**' का स्थान है और उनके भैरव हैं–'**वक्रनाथ**'। इस स्थल पर पाँच उष्ण जल-स्रोत हैं, जो **वात-रोगों** तथा **पक्षाघात** को दूर करते हैं।

'**नल-हाटी**' में **गले की नली** गिरी थी, अत: वहाँ देवी '**कालिका**' की प्रतिष्ठा है और उनके भैरव हैं–'**योगीश**'। वह स्थान स्टेशन से प्राय: एक कोस की दूरी पर नैर्ऋत-कोण में स्थित है। '**बोलपुर**' की उत्तर-पूर्व दिशा में तीन कोस की दूरी पर '**कोपाइ**' नदी के निकट देवी '**कङ्कालो**' का पीठ-स्थान है। यहीं '**बेलुटी**' ग्राम है, जहाँ **महा-कवि कालिदास** ने सिद्धि पाई थी।

'**केन्दु-विल्व**' (**केंदुलि**) ग्राम में **प्रसिद्ध कवि जयदेव**, '**नानुर**' ग्राम में **कवि चण्डीदास** और '**वीर-चन्द्र-पुर**' ग्राम में **महा-प्रभु नित्यानन्द** जैसे महा-पुरुष अवतीर्ण हुए। ऐतिहासिक, राजनीतिज्ञ **महाराजा नन्दकुमार** का जन्म इसी जिले के '**भद्रपुर**' ग्राम में हुआ था।

'**तारा-पीठ**' या '**तारापुर**' वशिष्ठ देव के '**सिद्ध-पीठ**' के रूप में विख्यात है। यह पीठ पूर्वी रेल्वे की लूप लाइन पर स्थित '**मोल्लारपुर**' या '**रामपुर**' हाल्ट स्टेशन से लगभग सात मील की दूरी पर और '**तारा-पीठ रोड हाल्ट**' स्टेशन से केवल तीन मील की दूरी पर स्थित है। यह '**तारा-पीठ**' ५२ पीठों के अन्तर्गत माना गया है।

'**तारा-पीठ**' तीन हैं। '**सती**' देवी के तीन नेत्रों के मणि-विन्दु बत्तीस योजन के अन्दर त्रिकोणाकार में तीन विभिन्न स्थानों पर गिरे थे। '**मिथिला**' के पूर्व-दक्षिणी कोने में '**भागीरथी**' की उत्तर दिशा में 'त्रियुगी' नदी की पूर्व-दिशा में '**सती**' देवी के **बाँएँ नेत्र की मणि** गिरी। यह स्थान '**नील-सरस्वती तारा-पीठ**' के नाम से प्रसिद्ध है। '**बगुड़ा**' जिले के अन्तर्गत '**कर-तोया**' नदी के पश्चिम में **दाईं मणि** गिरी। यह स्थान '**एक-जटा तारा**' या महा-देवी '**भवानी तारा-पीठ**' के नाम से विख्यात है। '**चक्रेश्वर**' के ईशान-कोण में '**वैद्यनाथ-धाम**' की पूर्व दिशा में उत्तर-वाहिनी '**द्वारका**' नदी के पूर्वी तट पर महा-श्मशान में श्वेत '**शिमूल**' के वृक्ष के मूल स्थान में '**सती**' देवी के **ऊर्ध्व नेत्र का तारा** गिरा। यह स्थान **शिला-मयी चण्डी भगवती** '**उग्र-तारा**' के नाम से प्रसिद्ध है। भैरव '**चन्द्र-चूड़**' हैं। इसी '**तारा-पीठ**' में **वशिष्ठ देव** ने सिद्धि-लाभ किया था।

उक्त तीनों '**तारा-पीठों**' में से किसी भी पीठ में **तीन लक्ष जप** करने से साधक को निश्चय ही **सिद्धि-लाभ** होता है और **भगवती की कृपा** से साधक के **आधि-भौतिक, आधि-दैविक व आध्यात्मिक-तीनों तापों का नाश** होता है।

परम पूज्या माई जी

महाराजाधिराज
श्रीरमेश्वर सिंह

महाराजाधिराज श्रीरमेश्वर सिंह जी ने पूज्या माई जी को 'शव-साधना' करने की आज्ञा दी थी। जब माई जी की शव-साधना पूर्ण हुई, तब महाराजाधिराज ने पूज्या माई जी को महा-पूर्ण-दीक्षाभिषेक प्रदान किया। उस समय पूज्या माई जी की अवस्था मात्र अठारह वर्ष की थी।

रजि० सं० ३२९८१/५७

शैव-शाक्त-महिमा

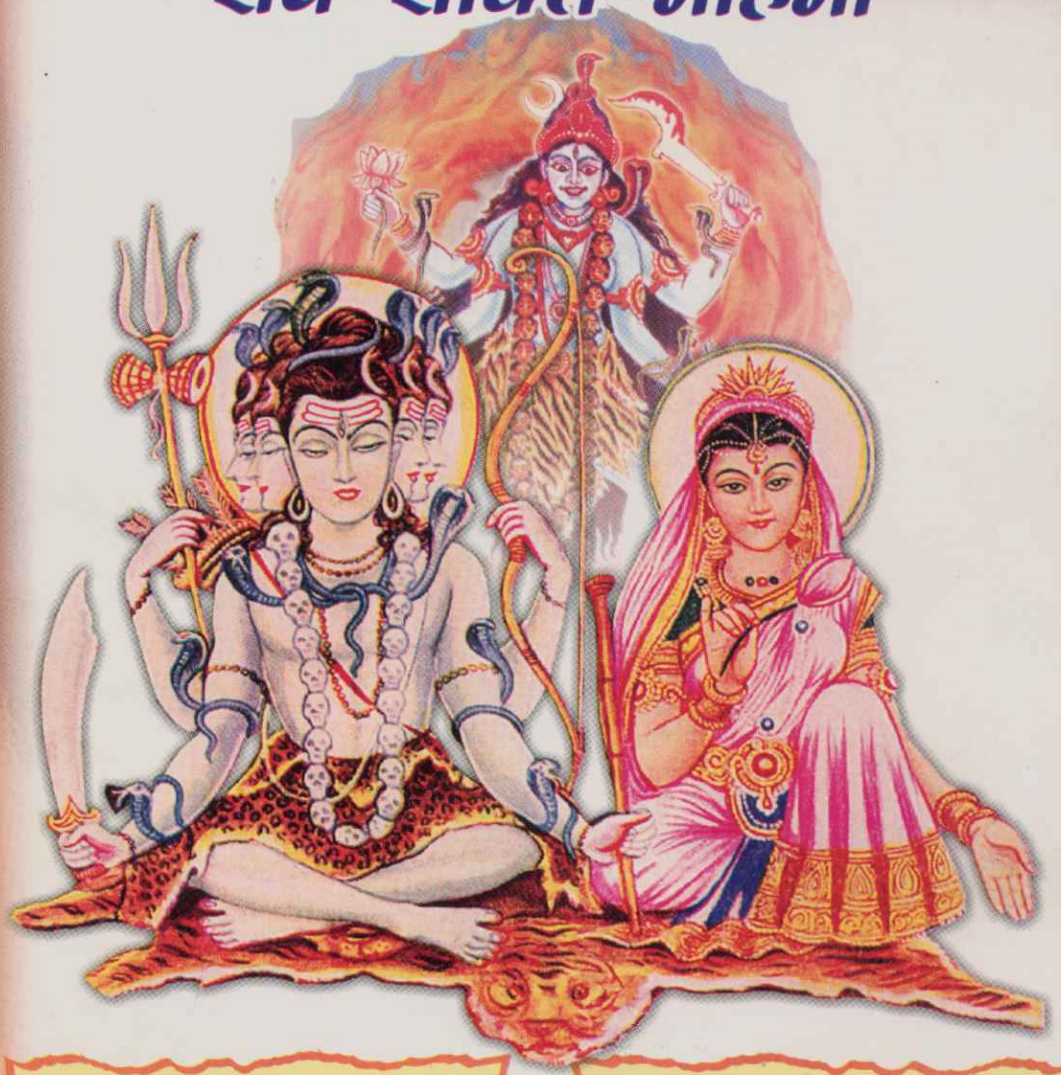

जिसने काली, तारा आदि की
आराधना कर ली है, वह 'शिव' है,
इसमें सन्देह नहीं।
जो उसे जानता है, वह 'शिव' ही है।

मेरे अंश-भूत प्राणी 'शैव' हैं और
तुम्हारे अंश-भूत 'शाक्त'
इसमें सन्देह नहीं है।

'शैव' और 'शाक्त' रूप में
जिस किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कुल में
उत्पन्न होंगे, वे मनुष्य न होकर देव-रूप ही होंगे।
केवल संसारी लोग ही उन्हें मनुष्य-रूप में देखेंगे।

-मुण्ड-माला तन्त्र

प्रकाशक : श्रीऋतशील शर्मा, श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-६ ☎ ०९२३५९१००७१